Year 4, Issue 14
April-June 2007

VASUDHA EDITOR-PUBLISHER : SNEH THAKORE

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ४ - अंक १४, अप्रैल-जून २००७

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
भारत का बदलता सामाजिक, आर्थिक भूगोल	कमलेश्वर	३
इस होली पर देश बहुत याद आया है	सरन घई	५
मेरा गुल मोहम्मद ऐसा नहीं हो सकता !	डा. मुक्ता	६
अजीब दौर में	डा. भगीरथ ब ोले	१३
मामला आगे बढ़ेगा अभी	चित्रा मुद्गल	१४
भूख	जितेन्द्र 'जौहर'	२१
क्या रोक पाई मैं तुम्हें..... ?	दीपमाला वर्मा	२२
आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	पूर्णिमा वर्मन	२३
ग़ज़ल	डा. अम्बाशंकर नागर	२७
जगाने का अपराध	डा. नरेन्द्र कोहली	२८
त्रिशंकु	डा. सत्येन्द्र श्रीवास्तव	३३
पनाह की कीमत	डा. उषादेवी कोल्हटकर	३४
अप्रासंगिकता का दंश	सदोष हिसारी	३८
रहस्य राम के वनवास का !	डा. जवाहर चौधरी	३९
हवा	डा. धनंजय सिंह	४०
त पती आत्मा	ममता खरे	४१
गीत	जवाहर इन्दु	४४

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00

डाक द्वारा By Mail................................$35.00

Website: http://ca.geocities.com/sneh.thakore/Home.html

e-mail: sneh.thakore@yahoo.ca

संपादकीय (अंक १४, अप्रैल-जून २००७)

टोराण्टो में भारतीय कौंसलावास के सभागार में २६ जनवरी, गणतंत्र दिवस के अवसर पर भारतीय कौंसलावास के प्रधान कौंसल जनरल माननीय सतीश चन्द मेहता जी ने ध्वजारोहण किया एवं राष्ट्रपति माननीय डॉ.ए.पी.जे.अब्दुल कलाम जी का संदेश पढ़ा, जिसमें उन्होंने ५८वें गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर शुभकामनाएँ देते हुए कहा कि वो आज 'मैं अपने राष्ट्र को क्या दे सकता हूँ?' बिषय पर बात करेंगे। राष्ट्रपति द्वारा विशेषरूप से युवा पीढ़ी का आह्वान भी समय की माँग है। उनका यह कहना कि अस्सी के दशक में बच्चे उनसे कुछ ऐसे सवाल पूछते थे जैसे कि, 'मै भारत का गाना कब गा सकता हूँ?' और आज युवा-वर्ग पूछ रहे हैं कि, 'मैं भारत को क्या दे सकता हूँ?', देश के लिए एक ब` अहम् एवं गर्व की बात है क्योंकि युवा पीढ़ी ही देश के भविष्य की कर्णधार है। जब युवावर्ग में यह भावना आती है तो देश का भविष्य सुनिश्चित ही प्रगतिशील, कल्याणकारी होगा।

इस साल के आरम्भ में ही हिन्दी जगत के एक वरिष्ठ प्रख्यात लेखक, पत्रकार, पट-कथा लेखक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, कमलेश्वर जी का २७ जनवरी २००७ को भारतीय समयानुसार शाम साढ़े आठ बजे फरीदाबाद में निधन हो गया। वे कुछ समय से अस्वस्थ थे।

पिछले वर्ष जब भारत गई थी, मैंने कमलेश्वर जी से कहा था कि अब अगली बार भारत आते ही आपसे मिलूँगी। मेरी उस वार्ता को सुन महाकाल हँसा होगा पर मैं उसका विकराल अट्टहास न सुन सकी। २७ जनवरी २००७ की साँझ साढ़े आठ बजे मेरा कमलेश्वर जी से मिलने का, खुली आँखों, होशोहवास में देखा गया सपना छिन्न-भिन्न हो गया। कमलेश्वर जी का जाना न केवल 'वसुधा' की वरन् सम्पूर्ण साहित्य जगत की बहुत ब ी क्षति है।

'वसुधा' के ग्यारहवे अंक में कमलेश्वर जी का विस्तृत साक्षात्कार प्रकाशित हुआ था। इस अंक में उनके प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि के रूप में, भारत के प्रति उन्हीं के विचार 'भारत का बदलता सामाजिक, आर्थिक भूगोल' आलेख प्रकाशित कर रही हूँ। कमलेश्वर जी के नाम के आगे स्वर्गीय लिखने का साहस नहीं जुटा पा रही हूँ; अभी उन्हें उसी रूप में याद करना चाहती हूँ उनके जिस पार्थिव रूप से वार्ता हुई थी।

नव वर्ष के लिए सभी आत्मीय-जनों की वसुधा, मेरे परिवार व मेरे प्रति शुभकामनाओं ने हृदय अभिभूत किया। सभी शुभचिन्तकों, आत्मीय-जनों द्वारा नव वर्ष हेतु प्रेषित की गई मंगल-कामनाओं के लिए परिवार-सहित हृदय से आभारी हूँ। मंगल-कामनाएँ ही जीवन को अदम्य साहस व उत्साह प्रदान करने में, असाध्य को साध्य बनाने में संजीवनी बूटी का कार्य करती हैं। यह ब` सौभाग्य की बात है कि आप सभी प्रिय हितैषियों का अपरिमित आदर-प्यार-आशीषें मिलीं। ईश्वर से प्रार्थना है कि ये पारस्परिक सद्भावनाएँ अक्षत रहें।

अंत में, आदरणीय एवं प्रिय डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जी की नव वर्ष के लिए भेजी गई पंक्तियों से, जो उन्होंने अपनी व प्रिय कमला जी की ओर से भेजी थीं, आभार सहित संपादकीय का अंत करना चाहूँगी जिसमें उन्होंने गागर में सागर भर दिया था। इन पंक्तियों में न केवल मेरे परिवार एवं वसुधा के लिए, बल्कि देश एवं सम्पूर्ण हिन्दी जगत के लिए मंगल-कामनाएँ निहित हैं -

'मंगलमय हो यह नया साल
भारत का भावी हो विशाल
दुनिया के स्वर में नया साल
भर दे भारत की नयी ताल
उस नयी ताल में नव तरंग
हो वसुधा की नूतन उमंग
ठाकुर-द्वारे में स्नेह-दीप
जला कर प्रकाश दें वह प्रदीप।'

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

भारत का बदलता सामाजिक-आर्थिक भूगोल

कमलेश्वर

अपना देश इस समय सामाजिक-आर्थिक न्याय और चौतरफा विकास के निर्णायक दौर से गुज़र रहा है। अगर जनसंख्या का प्रभावी नियमन और भ्रष्टाचार पर दस प्रतिशत नियंत्रण हो सका होता तो यही विकास हमें प्रगति के रूप में दिखायी देने लगता। सामाजिक और आर्थिक न्याय के सवाल हमें सुलझते हुए नज़र आने लगते। लेकिन तटस्थ भाव से देखा जाये तो अपने लोकतंत्र ने हिचकोले खाते हुए भी बहुत कुछ ऐसा बदल डाला है जिसकी उम्मीद टूट रही थी। दिमाग को सुन्न कर देने वाली बेईमानियाँ और दिलों को दहला देने वाले हादसे अभी भी हो रहे हैं, तमाम तरह के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक न्याय के सवाल अभी भी उलझे हुए हैं, पर बदलाव यह आया है कि उन्हें जनहित में सुलझाने के स्तर पर क्षेत्रीय और स्थानीय जनमत तैयार दिखाई देने लगा है। हम महसूस कर सकें या न कर सकें पर यह चमत्कारिक परिवर्तन पंचायती राज द्वारा किये गये सशक्तिकरण ने कर दिखाया है। भारतीय ग्रामीण और कस्बाई समाज में सोच और जागरूकता की जो हलचल बढ़ी है, वह पंचायती राज की ही देन है। यह माना कि अभी भी भारत की अधिकांश आबादी की बदहाली के आँक` नहीं बदले हैं पर यह भी तय है कि उन्हें बदलने की कशमकश शुरू हो चुकी है। कुछ लोग इसका श्रेय भूमंडलीकरण की नीतियों और खुले बाजार की व्यवस्था को देना चाहेंगे पर असलियत यह है कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया अपने देश में वैश्विक भूमंडलीकरण के आगमन से पहले शुरू हो चुकी थी। एक ही मिसाल काफी होगी कि भूमंडलीकरण से दशकों पहले अन्न की कमी से त्रस्त इस देश के पंजाब और हरियाणा प्रांतों ने हरित क्रांति करके, हमें आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि अन्न निर्यातिक देश के स्तर तक पहुँचा दिया था।

यहाँ विस्तार में जाने की जगह नहीं है, लेकिन कुछ औसत और रोजमर्रा उठने वाली चिन्ताओं को उठाया जाए तो भी ब` सकारात्मक तथ्य सामने आते हैं। अँग्रेजी भाषा के वर्चस्व को ही ले लीजिये। अँग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व को लेकर जायज़ चिन्ताएँ व्यक्त की जाती हैं पर साथ ही इस सच्चाई को नज़र-अंदाज़ नहीं किया जा सकता कि भारत की सभी प्रादेशिक राजधानियों और सरकारी कामकाज में हिन्दी और प्रादेशिक भाषायें स्थापित हो चुकी हैं। यह सही है कि केन्द्र सरकार अँग्रेजी में ही चलती है पर इस देश का जीवंत लोकतंत्र हिन्दी और अपनी भारतीय भाषाओं के बल पर ही चलता है। अँग्रेजी केवल फुनगी यानी शिखर की भाषा है, ज ों की नहीं। हिन्दी और भारतीय भाषाओं के राष्ट्रीय और क्षेत्रीय समाचार पत्रों का जो अभूतपूर्व विकास हुआ है, वह दुनिया के किसी देश में संभव नहीं हुआ है। अँग्रेजी सहित चीन की मंदारिन भाषा में भी नहीं। आज भारत में अमेरिका से कहीं ज्यादा टी.वी. चैनल चलते हैं और उनमें हिन्दी चैनलों की लोकप्रियता और स्पर्धात्मक वर्चस्व को कोई अँग्रेजी चैनल आज तक तो नहीं पाया है। इन चैनलों के तकनीकी क्षेत्र में अवसर पाने के लिए विदेशी तकनीशियनों की भी आज भारत की ओर उन्मुख है।

यही हाल हमारी मुंबई फिल्म इंडस्ट्री का है जो मनोरंजन के क्षेत्र में हॉलीवुड को पछा कर अब दुनिया की सबसे ब ी लोक-संस्कृति और मनोरंजन की इंडस्ट्री बन चुकी है। कला में अभिरुचि रखने वाला, दुनिया के किसी भी देश का प्रतिभा संपन्न व्यक्ति अब 'हज यात्रा' पर भारत आता है, उसकी पहली पसंद भारत है, अमेरिका का हॉलीवुड नहीं।

और सूचना संचार की दुनिया को तो भारत ने अपनी विशेषज्ञता, मेधा और प्रतिभा के बल पर पूरी तरह बदल डाला है। भारतीय प्रतिभा पलायन की परम्परा पूरी तरह टूट चुकी है। अब अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया जैसे देशों की युवा प्रतिभा भारत के सूचना संचार सेक्टर में शामिल होने के लिए क्यू में ख ी है। यही स्थिति रेलवे और कार निर्माण के सेक्टर की है। अभी तक हमारी टीमें फ्रांस, ब्रिटेन और जापान जाया करती थीं, अब उन्नत और कारगर तकनीकों की जानकारी के लिए इन देशों के अलावा विकासमान लैटिन अमेरिकी, अफ्रीकी और यूरोपीय संघ के विकसित देशों की टीमें अब भारत आती हैं।

यह ठीक है कि फास्ट-फूड वाले मैकडॉनल्ड, केएफसी, पेप्सी और कोकाकोला ने हमारा मध्यवर्गीय शहरी बाजार पक ा है पर अमेरिका और कनाडा के पूरे फूड बाजार को भारत का गुजराती व्यवसायी अपने कब्जे में ले चुका है।

मेडिसिन और डॉक्टरी विशेषज्ञता का आलम तो यह है कि मध्य एशिया, अरब देशों के साथ ही दक्षिणी एशिया का मरीज़ ही नहीं, उनका युवा तबका भारतीय मेडिकल संस्थानों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए ब ी संख्या में आने लगा है। यह बात दूसरी है कि हमारा राजनेता वर्ग अभी भी मेडिकल इलाज़ और परामर्श के लिए अमेरिका की ओर भागता है। और तो और, दवा उद्योग के क्षेत्र में भारत अपने मजबूत कदम आगे बढ़ा चुका है। हर्बल और आयुर्वेदिक बाज़ार की बात न भी करें तो भी एलोपैथी मेडिसिन के क्षेत्र में, विश्वविख्यात देश स्विट्ज़रलैंड की नामी-गिरामी कंपनियों को उत्पादन की गुणवत्ता और विश्वसनीयता के मामले में भारत बहुत पीछे छो चुका है। उनके विशेषज्ञ भारत की दवाई कंपनियों में काम करने और अपनी प्रतिभा को चमकाने के लिए आकर्षित हो चुके हैं। उनके पैर भारत की ओर मु चुके हैं।

और संक्षेप में, जब से भारत का आकाश उन्मुक्त हुआ है और हवाई यातायात बढ़ा है तब से इंडोनेशिया, मलेशिया और कंबोडिया के अँग्रेजी पठित, करीब तीन हज़ार पायलट और तकनीशियन भारतीय कंपनियों में जॉब पा चुके हैं और सैक ों अर्जियाँ लिए ख े हैं। बायोटेक के क्षेत्र में भारत धाक जमा चुका है। जेनेटिक्स के क्षेत्र में प्रयोग करके अब भारत दुग्ध-क्रांति और नील-क्रांति (फिशरीज़) की देहलीज़ को पार कर चुका है। अमेरिका की सिलीकोन वैली में गई हुई भारतीय प्रतिभा बहुत तेजी से भारत लौट रही है। टेक्नोलॉजी और मैनेजमेंट के स्नातक अब आँख मूँद कर विदेशों में पलायन नहीं कर रहे हैं, वे भारत में ही बेहतर होते अवसरों के लिए प्रतीक्षारत हैं। यह सही है कि हिमालय जैसे ऊँचे और सागर जैसे गहरे सामाजिक और आर्थिक न्याय के प्रश्नों का सही और मानवीय निपटारा होना अभी बाकी है लेकिन जो न्यूनतम हुआ और हो सकता है, उसमें संभावनाएँ मौज़ूद हैं।

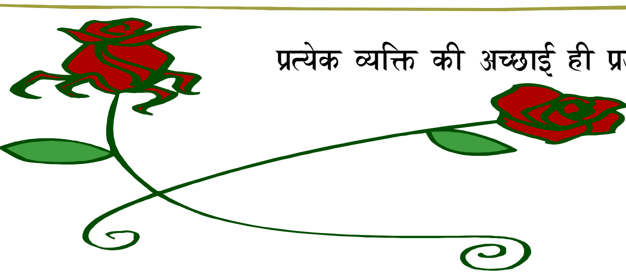

प्रत्येक व्यक्ति की अच्छाई ही प्रजातंत्रीय शासन की सफलता
का
मूल सिद्धांत है।

राजगोपालाचारी

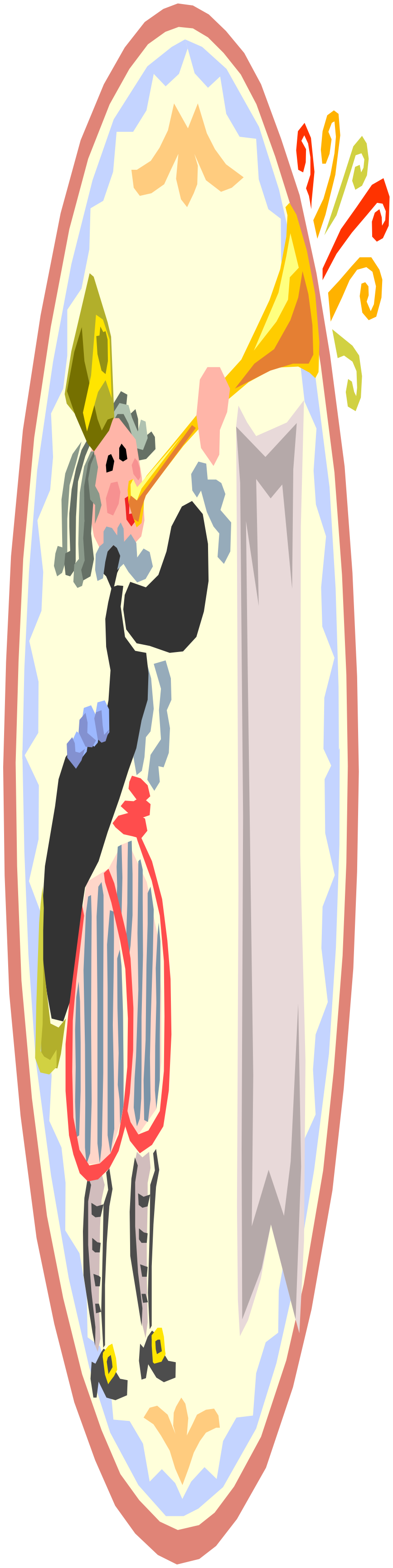

इस होली पर देश बहुत याद आया है

सरन घई

रंगों वाली ॠतु ने बहुत सताया है,
इस होली पर देश बहुत याद आया है।

लाल गुलाबी रंग बिखेरा करते थे,
डफ की थाप पे कैसे पाँव थिरकते थे,
चेहरों को हम रंग-बिरंगा करते थे,
पर इस बार कहाँ वो मौसम आया है,
रंगों वाली ॠतु ने बहुत सताया है,
इस होली पर देश बहुत याद आया है।

साथी और हमजोली कितने प्यारे थे,
दुख और सुख दोनों के वही सहारे थे,
आती जब होली वो मिलने आते थे,
स्नेह मिलन के मधुर तराने गाते थे,
पर इस बार कहाँ वो स्वर लहराया है,
रंगों वाली ॠतु ने बहुत सताया है,
इस होली पर देश बहुत याद आया है।

स्नेह सिक्त साली की बात निराली थी,
हम भी खुश थे, कितनी खुश घरवाली थी,
मम्मी पापा को हम तिलक लगाते थे,
छूकर पाँव असीसें उनकी पाते थे,
अब की बार कहाँ वो निर्मल छाया है,
रंगों वाली ॠतु ने बहुत सताया है,
इस होली पर देश बहुत याद आया है।

जब आती थी होली रंग बरसाते थे,
गुब्बारे, गुलाल, पिचकारी लाते थे,
गुजिया और घेवर सब मिलकर खाते थे,
बच्चों के तो ख़ूब मजे हो जाते थे,
अब तो जीवन जैसे ढलती छाया है,
रंगों वाली ॠतु ने बहुत सताया है,
इस होली पर देश बहुत याद आया है।

कैसा घर था कैसी घर की खुशबू थी,
लॉन था बाहर भीतर छोटी बगिया थी,
आँगन में क्या धूप सुनहरी आती थी,
आम के पे पे कोयल बैठी गाती थी,
अब की बार कहाँ कोयल ने गाया है,
रंगों वाली ॠतु ने बहुत सताया है,
इस होली पर देश बहुत याद आया है।

मेरा गुल मोहम्मद ऐसा नहीं हो सकता !

डॉ. मुक्ता

'कश्मीर में सुरक्षा-बलों ने अपने आतंकवाद निरोधी अभियान के दौरान दस लोगों को गिरफ्तार किया। इनमें प्रतिबन्धित जमात-ए-इस्लामी के चार ब` नेता शामिल हैं।

श्रीनगर के हज़रतबल इलाके में कुख्यात आंतकवादी गुल मोहम्मद सुरक्षा-बल के जवानों द्वारा मुठभे में मारा गया।'

मैं चौंक उठती हूँ। अख़बार मेरे हाथ से छूट जाता है।

'माँ-माँ, तुम्हारी चिट्ठी एक अंकल देकर गये थे।'

मैं पत्र खोलती हूँ। मेरी आँखें कुछ पंक्तियों से फिसलती हुई आगे बढ़ जाती हैं।

मैंने दरवाज़ा खोला। वह दरवाज़ा न था, एक चीख थी जो कई दिनों से गुमसुम जक ी हुई थी और इस समय मुँह से बेतहाशा निकली जा रही थी। मैंने भागने के लिए कदम आगे बढ़ाया, ठण्डे लोहे का सर्द चीरा मेरी पसलियों में घुस गया, वे संगीनें थीं। मेरे कदम जम गये। मैं सामने देख रहा था एक लाश, बिलकुल दरवाज़े के सामने, गली के बीचों-बीच। कभी वह भी हँसती थी, रोती थी, गुस्से से बौखलाती थी, एक ल की की मुहब्बत में इस हद तक गिरफ्तार थी कि भूल बैठी थी सियासी झमेले उठने पर हर खून का रंग लाल नहीं रह जाता। लेकिन आज वह एक बेजान, ठण्डी लाश थी। मैं गि गि ाया, उन लोगों के आगे मिन्नतें कीं। संगीन की नोंक पर एक नज़र देखने की इज़ाज़त मिली। मैं लाश के मुँह पर झुका। मेरे गर्म होंठों ने बर्फीले माथे को चूमा। मैं चाहता था उसे अपने अंदर छिपा लूँ। अपने अंदर के दरिया को मैं सँभाल नहीं पा रहा था। मैं इन कसाइयों का मुँह नोंच लेना चाहता था। मैं उन सभी की शक्लों मे, खरोंचें भर देना चाहता था। लेकिन मैं केवल अपने बालों को नोचता रहा, मेरे नाखून मेरे ही गालों को खरोंचते रहे। जब होश आया तो मैंने आगे बढ़ कर लाश को बाँहों में उठना चाहा। एक आवाज़ चीखी, 'उठाने का हक़ तुम्हारा नहीं है, वापस जाओ और तमाशा देखो।' यह तमाशा मैंने ही नहीं मेरे सभी घरवालों ने देखा और एक दिन नहीं, पूरे पाँच दिन तक देखा। यह मेरे छोटे भाई की लाश थी।

खरोंचों की शक्लें बिग के पैने नश्तर में बदल गयी थीं। आँखें जो खुले आकाश में प्रश्न-सी टँगी थीं, लाचार होकर ज़मीन में ढुलक गयी थीं। कप` माँस के अन्दर इस तरह ज़ज़्ब हो गये थे कि यदि उन्हें अलग करने की कोशिश की जाती तो माँस की सिल्लियाँ सारी गली में फैल जातीं। चील, कौवे के ढेर मँडरा-मँडराकर घर के बच्चों को भी घायल करने लगे थे। हम रात भर पहरे में बैठे रहते थे। स` माँस की तीखी बदबू सारी गली में भरी हुई थी। यह हाल केवल मेरी ही गली का ही नहीं था, लाल चौक, जैनाकदल और सनाकदल के पास तथा और भी शहर में कई जगह ऐसी लाशें प ी थीं जिनके घर के लोग उन्हें अपने हाथों से आग और मिट्टी के हवाले करना चाहते थे। लेकिन हम सब डरे हुए लोग थे। हम लोग भी कहाँ थे, बस चलती-फिरती, डरी हुई आकृतियाँ मात्र थे। साँस लेना हमारे लिए एक लाचारी जैसा हो चुका था। एक दिन जब दूसरा धमकी-भरा पत्र मिला, तो वे बोल प ीं, 'अब नहीं रहा जाता यहाँ।' तीन दिन से वे बेहोश थीं। किसी तरह, भाई की लाश को वैसे ही गली में खुला छो कर हम लोग दिल्ली पहुँचे।

तुमसे मिलने का बहुत मन था। मालूम हुआ तुम एक हफ्ते बाद आओगी। मुझे जाना है, अंजू और बच्चे प्रतीक्षा में होंगे। बेबे से मिलती रहना। मैं भी आता रहूँगा। सारा परिवार एक रिश्तेदार के घर ठहरा हुआ है। पता मैं पीछे लिख रहा हूँ। शेष मिलने पर।

शुभेच्छु - शरद

पत्र मो कर तकिये के नीचे सरका कर चुप बैठी हूँ। यह पत्र है या दस्तावेज़, उस कश्मीर का जहाँ की बदसूरती में भी खूबसूरती का अहसास छिपा रहता है। हैरानी हुई थी मुझे खूबसूरत पहा ी के नीचे चिनार के पे ों के बीच में बनी कोतवाली को देख कर। मेरे मुँह से निकल गया था,

'यहाँ तो पिकनिक स्पॉट होना चाहिये।' शरद हँसा था, खूब खुलकर जैसी उसकी आदत थी, 'यार, कभी तो ज़मीन पर उतरा करो, हर समय आसमान में ही उ ती रहती हो।'

मैंने चुप होकर कहा था, 'क्या करूँ, यहाँ की हर चीज़ इतनी खूबसूरत है कि मुझे लग रहा है मैं सब कुछ मुट्ठी में भर लूँ।'

'यहाँ की हर चीज़ खूबसूरत है, लेकिन यहाँ की ल कियों को छो कर।'

'कैसी बातें कर रहे हो? यहाँ की ल कियाँ तो जन्नत की हूरें कही जाती हैं।'

'मैं ठहरा पटन का पंडित, अपने ही कश्मीर की ल की को खूबसूरत कैसे कह सकता हूँ? वैसे तुम भी कम सुन्दर नहीं हो।'

इसके बाद मुझे जोरों की हँसी आ गयी और मेरा हाथ उसके सिर की ओर बढ़ा लेकिन वहाँ बालों की जगह बियाबान रेगिस्तान नज़र आ रहा था।

हम ग्यारह वर्ष बाद मिले थे। शरद मेरा जूनियर था। लेकिन टूर में हम लोग एक साथ ही दक्षिण भारत घूमने गये थे। उसका जीवन्त व्यक्तित्व चुम्बक की तरह हम सभी को अपनी ओर खींचता था। गतिज ऊर्जा का वह मूर्त रूप था। उसके आम चेहरे को उसकी चमकती आँखें और फ्रेंच-कट दाढ़ी खास बना देते थे और सेब-सा गुलाबी रंग उसे कश्मीरी घोषित करते थे। साँपों की नस्ल से लेकर आर्यों की वंशावली तक, मिग फाइटर से लेकर सूर्य किरणों में स्वर्ण कणों की उपस्थिति के शोध तक और खजुराहो की एक-एक मुद्रा किस दिन से संबंधित है, ये सभी विषय उसके मस्तिष्क में कम्प्यूटर के 'आँक ों' जैसे भरे रहते थे। वह वात्स्यायन की इस युक्ति का पक्षपाती था कि प्रत्येक दिन के काम का निवास एक विशेष अंग में होता है, इसीलए मुद्रा देखते ही वह दिन की भविष्यवाणी कर देता था। वह एक-एक विषय को ट्रंप कार्ड की तरह निकालता जाता था और सामने वाले को धराशायी कर देता था। कभी-कभी किसी झा ी के पास रुक कर एक नाम उछाल देता 'विन्का रोजिया', लेटेस्ट रिसर्च कैन्सर की दवा इसी से निकाली गयी है।

मुझे अच्छी तरह मालूम होता कि यह 'विन्का रोजिया' नहीं है। विन्का रोजिया सदाबहार को कहते हैं। उसके फूल तो सफेद और बैंगनी होते हैं, उसे 'ऑनर्मिंटल प्लांट' की तरह गमलों में भी सजाया जाता है। फिर भी मैं 'हिप्नोटाइज़'-सी आँखें फा े उसका चेहरा देखती रहती। वह समझ जाता। धीरे-से आकर मेरे कान में कहता, 'थैंक्यू, ऑय एम रियली ओब्लाइज़्ड।' सभी सहपाठी छात्रों का वह रॉबिनहुड बना रहता।

हैदराबाद पहुँच कर निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हम लोग दवा की फैक्टरी देखने पहुँचे थे। अच्छी, साफ-सुथरी फैक्टरी। फैक्टरी के गेट तक, मालिक खुद चमचमाती कार पर हमें रिसीव करने आया। उस समय हमें अपने पाँव के नीचे मिट्टी का होना बहुत खला था। हम सब सिकु गये, सब कुछ वायवीय-सा लग रहा था लेकिन वह फैक्टरी का मालिक और उसकी चमचमाती कार सपनें बो गयी थी। उस सपने के धागों पर तैरते हुए हम 'रिसेप्शन' में पहुँचे। रिसेप्शनिस्ट क्या थी, पूरी 'एक्स पो' की टेक्सटाइल विंग की तराशी हुई मॉडल, फेविकॉल से चिपकी हुई मुस्कराहट, पैंडूलम-सी घूमती हुई आँखें। 'वेलकम फ्रेंड्स' कह कर शोखी से उसने विदेशी छात्रों की ओर देखा तो गुदगुदी देशी छात्रों के दिलों में हुई। हम लोग आगे बढ़े।

ब ी-ब ी मशीनों में कल-पुर्जे जैसे टुके हुए छोटे-छोटे आदमी। पास जाने पर उनके चलते-फिरते हाथ-पैर नज़र आते थे। क्वालिटी कंट्रोल की ल कियों की क्वालिटी पर हमारा रॉबिनहुड कुछ इस तरह फिसला कि हम लोग फैक्टरी का कोना-कोना छान आये लेकिन उसका एक सेक्शन भी पूरा न हो सका। गेट से निकलते समय मेरे कान में फुसफुसाया गया, 'क्या चीज़ थी यार। मैं तो कुछ भी न लिख पाया। अपनी नोटबुक मुझे दे देना, यह तो नोट कर लूँगा कि इस फैक्टरी के मेन प्रोडक्ट्स क्या हैं?'

चार मीनार के पास वाली मस्ज़िद की तराशी हुई नक्काशी मुझे दूर से ही आकर्षित कर रही थी। ब े गलियारे में होकर चप्पल उतार कर जैसे ही मैंने अंदर जाने के लिए पैर बढ़ाये, पीछे से एक रोबीली आवाज़ आयी, 'आप भीतर नहीं जा सकती हैं और आप सब लोग भी सिर ढँक कर अंदर जाइये।'

मेरा सारा उत्साह हवा हो गया। एक कोने में चुपचाप बैठ गयी। सभी साथी अंदर जा चुके थे। शरद मेरे पास पत्थर पर बैठता हुआ बोला, 'चलो, आज मैं भी तुम्हारे साथ औरत बन जाता हूँ।'

मैं चुपचाप फ फ ाते कबूतरों को देख रही थी। उस निर्जन परिवेश में कबूतरों का दाना चुगना और गुटरगूँ की प्यारी-सी आवाज़ मुझे सहला रहे थे। मैं तन्मय थी, अपने आस-पास की हवा और धूप से भी निर्लिप्त। सहसा एक परछाईं चमकी, मैं डर गयी। यह आदमी के शरीर की रेखाएँ नहीं थीं, जैसे कोई बुत बहुत दिन पहले दफना दिया गया हो और अचानक ही उठ बैठा हो। मैंने चौंक कर सिर उठाया। सफेद जाली के अन्दर से दो आँखें चमकीं। सफेद घेरदार, टोपीवाला बुर्का ओढ़े, कबूतरों का चुग्गा हाथ में लिये एक औरत फर्श पर दाने बिखेर रही थी। ढेर सारे चितकबरे, सफेद कबूतर फर्श पर चकत्तों की तरह फैले हुए पंख फ फ ा रहे थे और दानों पर चोंच मार रहे थे। चुग्गा खत्म हो जाने पर वह मस्ज़िद की दहलीज़ तक आयी। उसके हाथ आसमान की ओर उठे और वह धीरे-धीरे वापस स क की ओर मु गयी। शरद उसकी जाती हुई परछाईं को देर तक आँखों से पक ने की कोशिश करता रहा, फिर एक लम्बी साँस खींचकर बोल उठा, 'प्रिपाल, क्या वास्तव में हम इक्कीसवीं सदी की ओर जा रहे हैं। मुझे तो लगता है हम फिर से मोहनजोद ो और ह प्पा की ओर लौट रहे हैं।'

बँगलौर पहुँचते-पहुँचते दो अध्यापकों के दो गुट बन गये थे। एक अध्यापक थे साईं बाबा के परम भक्त, बिना साईं बाबा की चरण-रज लिये आगे का 'एजूकेशनल टूर' उनके लिए संभव न था। अतः एक पूरा गुट 'गुरु दक्षिणा' का कर्ज़ उतारने उनके साथ साईं बाबा की जन्मस्थली की ओर चल दिया। केनिया का क्लाइड भी जब चुस्त जीन्स और डरावने मुँह वाली टी-शर्ट पहने, पीठ पर थैला लादे उनके पीछे जाने लगा तो शरद ने उसे पीछे से पक ा, 'अबे, तू भी जा रहा है। ही इज़ नॉट गोइंग फॉर रोमिंग।'

'ऑय नो, ऑय नो, बट इट डोन्ट मेक एनी डिफरेन्स फॉर मी। ही हैज़ टु अलॉट मार्क्स इन एक्ज़ामिनेशन एंड इट्स अवर ड्यूटी टु प्लीज़ हिम।'

शरद ने क वाहट से मेरी ओर देखा, 'ये विदेशी, हिन्दुस्तानी लटके कितनी आसानी से सीख लेते हैं। साला चमचागिरी करने जा रहा है। नीग्रो कहो तो बिग जाता है, कहता है, 'टेल मी ब्लैक' और यहाँ तलुए चाटने को भी तैयार है। तुम क्या कर रही हो यहाँ ! जाओ, गेरुए कप े पहन लो, हाथ में मजीरा लेकर लाइन में सबसे आगे लग जाओ। टॉप कर जाओगी। गोल्ड मेडल मिलेगा।'

मेरे सारे शरीर का खून चेहरे की ओर उबलने लगा था। मैंने खुद को अपमानित महसूस किया था। इतना ही मुँह से निकला था, 'शरद, सँभालो अपने आपको' उसके जाने के बाद भी मैं उद्विग्न थी, और जहाँ तक सम्भव था, उसकी परछाईं से भी दूर भागने का प्रयास कर रही थी। मेरे सीनियर होने का दर्प बार-बार मुझे मुँह चिढ़ा रहा था।

बहुत दिनों बाद अपने एक सहपाठी के पत्र से पता चला था कि डॉ. तिलकराज की भक्ति दीवानगी की हद तक बढ़ गयी थी। उनका ब ा ल का अंतिम साँसें गिन रहा था और वे उसके मुँह में साईं बाबा की भभूत डाले, चुप बैठे उसके ठीक हो जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अस्पताल तो दूर, औषधिशास्त्र में पोस्ट-डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त वरिष्ठ प्राध्यापक के बेटे को औषधि की एक बूँद भी नसीब न हुई। मृत्यु के बाद भी सत्संग चलता रहा, बेटे के पूरे शव पर भभूत छि क दिया गया था और डॉक्टर तिलकराज पत्नी सहित साईं के चित्र के आगे आँखें मूँदे किसी चमत्कार के घट जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन दिन बाद ब ी मुश्किल से शव को श्मशान ले जाना संभव हो सका था।

पढ़ कर लगा था, हम अपनी दीवारों में कितने बंद हो चुके हैं। अपनी ज़मीन से जु े रहना तो वास्तव में आवश्यक है। ज ों से कट कर जो संस्कृति उपलब्ध होगी, वह ओढ़ी हुई होगी, खोखली होगी; लेकिन 'हिप्टोनाइज़' होने वाली मानसिकता क्या वायवीय नहीं है? डॉ. तिलकराज का क्लास में दिया गया लेक्चर याद आ गया था, 'कोरैमिन ही एकमात्र औषधि है जिसे 'जीवन रक्षक औषधि' माना जा सकता है। हमें इस क्षेत्र में नये-नये रिसर्च करने होंगे जिससे नयी-नयी 'जीवन रक्षक औषधियाँ' सामने आ सकें और अधिक-से-अधिक लोगों के प्राण बचाये जा सकें।'

लेकिन उसी दिन बँगलौर में, मैं शरद की गोल्ड मेडल वाली बात सुन कर झुँझला उठी थी।

शाम को शरद मेरे कमरे में हवा की तरह आ पहुँचा था, 'चलो, मेरी शॉपिंग करा दो, एक बहुत बढ़िया डिपार्टमेंटल स्टोर देखा है।'

'डिपार्टमेंटल स्टोर या कोई सेल्स गर्ल?'

'सेल्स गर्ल देखी होती तो तुम्हें साथ क्यों ले चलता?'

डिपार्टमेंटल स्टोर के चक्कर लगा-लगाकर मैं थक चुकी थी। मैं शर्ट पसंद करती तो वह टाई के काउंटर पर नज़र आता। मैं टाई काउंटर पर पहुँचती तो वह बेबी फ्राक के काउंटर पर उ जाता। सेल्स गर्ल पूछ रही थी, 'किस नम्बर का फ्राक दूँ?'

यहाँ उसका कम्प्यूटर फेल हो गया था। ब ी भोली दृष्टि से मेरी ओर देख कर बोला, 'दीदी, कौनसे नम्बर का फ्राक पहनती है टिंकू?'

'ये आपकी बहन हैं?' उसने सहमति में सिर हिलाया था।

ल की चहक उठी थी, 'मैं तीन दिन से देख रही हूँ, आप आते हैं और केवल दाम पूछ कर चले जाते हैं?'

'जी, मैं परेशान हूँ, मेरी भांजी का बर्थ-डे है, उसे फ्राक प्रेजेंट करनी है और नम्बर मुझे मालूम नहीं है इसीलिए आज दीदी को लाया हूँ।' ब ी मासूमियत से मुझे देखते हुए वह बोला।

हँसी दबाते हुये मैं फ्राक छाँटने का अभिनय करने लगी। उसने एक खूबसूरत-सी फ्राक छाँटी और बिल चुकाने काउंटर की ओर बढ़ गया था।

सीढ़ियाँ उतरते समय पैकेट मेरे हाथ में पक ाते हुए वह बोला, 'मेरी ओर से अपनी होने वाली बेटी को प्रेजेन्ट कर देना। मैं जानता हूँ तुम विवाहित हो, लेकिन यह मत समझ लेना कि मैंने तुम्हें बहन मान लिया है। यह तो एक मज़ाक था। बाई द वे यह सेल्स गर्ल तुम्हें कैसी लगी? मैं इससे शादी कर लूँ?' उसके स्वर की भावुकता मुझे प्रभावित कर रही थी, फिर भी मैंने उसे छे ा था, 'किस-किस से शादी करोगे तुम? अभी वह हैदराबाद वाली भी तुम्हारे नाम पर बैठी रो रही होगी।'

इसके बाद कोई अन्य उल्लेखनीय घटना घटी हो, ऐसा मुझे याद नहीं है। हम लोगों ने मद्रास में कुछ और फैक्टरियाँ देखीं, नोट्स लिये। वहाँ गर्मी बहुत थी, हम लोग ऊबे हुए थे और 'घर' हम लोगों के ऊपर हावी होता जा रहा था। परदेश की हवा कितनी अजनबी होती है, इसका अनुभव हम लोगों को होने लगा था।

टूर से लौटने के बाद विश्वविद्यालय छो ने तक मेरा और शरद का संबंध औपचारिक ही बना रहा। वे कुछ दिन जो हमने साथ बिताये थे, सफेद कैनवस में चटकीले रंगों से अलग से चिपकाये हुए-से लगते थे।

ग्यारह वर्ष बाद कश्मीर में अचानक हज़रतबल के पास शरद नीली मारुति वैन के पास ख ा हुआ दिखा। मेरे साथ आठ छात्राओं का छोटा-सा ग्रुप था जिन्हें मैं कश्मीर घुमाने लायी थी। उसकी नीली-भूरी आँखों में यदि पहले-सी चमक न होती तो मुझे अपनी याददाश्त की मीलों परिक्रमा करनी प जाती। पहला वाक्य जो उसे देखते ही अनजाने में निकल गया था, 'शरद, तुम कितने 'एजेड' लग रहे हो? तुम्हारे बाल और दाढ़ी दोनों ही गायब हो गये हैं?'

वह मेरे करीब आकर फुसफुसाया जैसी कि उसकी आदत थी, 'कम-से-कम इन बुलबुलों के सामने तो ऐसा मत कहो। अच्छा चमन सजा रखा है, मास्टरनी बन गयी हो क्या?'

ग्यारह वर्ष का समय एक झटके में उ गया। हम फिर हल्के हो गये थे पहले की तरह ही। मुझे मालूम था कि शरद श्रीनगर का रहने वाला है। एक लम्बे समय को कुछ मिनटों में समेटकर मैंने उसके आगे रख दिया और उसकी पर्तों में घुसने की कोशिश की।

'एक बेटी हैं मेरी, नाम है वितस्ता। परिवार मुंबई में ही है। पापा की तबीयत थो ी खराब थी। छुट्टी लेकर आया हूँ।'

वह कोशिश कर रहा था सहज बनने की, फिर भी काली लकीरें तैर जा रही थीं। शो-केस में ब ी खूबसूरत कशीदाकारी वाले शॉल और फिरन देख कर मेरे पैर थम गये। दुकान में घुसते हुए एक दृष्टि मैंने साथ आयी छात्राओं पर डाली। वे सब मेरे पीछे आ रही थीं।

'क्या दिखाऊँ, बहन?'

मैंने चौंक कर देखा। करीब छः फीट लम्बा कद, गठा बदन, कश्मीरी सेब जैसा गुलाबी रंग, तैमूरी चेहरे पर तराशी हुई दाढ़ी, हँसती हुई आँखें और पीले चमकते दाँत वाला व्यक्ति पठानी सलवार-कुर्ता पहने कप ों के ढेर के बीच में बैठा था।

मैंने एक शॉल खींची। सफेद शॉल पर ब े सुन्दर गुलाब उभरे हुए थे।

'ले लो, बहन, यह कारीगर के पूरे साल की मेहनत है। तुम्हारी खूबसूरती में चार चाँद लगा देगी।'

'पूरे साल की क्यों?'

'यह हाथ की कारीगिरी है, बहन, एक दिन में नहीं बनती है। बर्फ के दिनों में कश्मीरी अपने घरों में बैठकर कशीदाकारी करता है। ब ी मुश्किल से एक या दो ऐसी शॉलें तैयार कर पाता है। फिर उसकी नज़र सैलानियों पर जमी रहती है। हमारी रोजी-रोटी तो सैलानियों से ही चलती है।' एक ठंडी साँस भर कर वह फिर कहने लगा, 'जब से पंजाब के हालात खराब हुए हैं, सैलानियों का आना बहुत कम हो गया है। खुदा मददगार है, सबकी रोजी-रोटी चलाता है। यह शॉल अलग रख देता हूँ, तुम और चीज़ें भी देख लो।'

वह मेरे आगे कप ों की तह खोलता जा रहा था। उसके माथे पर शिकन भी नहीं थी। थो ी देर बाद इक काले रंग का फिरन दिखाते हुए उसने मुझसे पूछा, 'कहवा पियोगी, बहन?' दिल्ली के खिंचे हुए चेहरों और चढ़ी हुई भौंहों वाले दुकादारों को देखने वाली मेरी आँखें और 'जाने कहाँ से चले आते हैं', 'दुकान को अपने बाप का माल समझ रखा है। खोते, टैम बरबाद करते हैं।' सुनने के अभ्यस्त मेरे कान सतर्क हो गये। कहवा पिया तो ऋण-ग्रस्त हो जायेंगे। उत्रृण होने के लिए लम्बा-चौ ा बिल चुकाना प ेगा। वह मेरा भाव समझ गया।

'यह तुम्हारा घर है, बहन, तुम मेरी मेहमान हो।'

'लेकिन मेरे साथ बहुत लोग हैं।'

'कोई बात नहीं, मेरा मालिक बहुत भला आदमी है। जाओ सगीर, कहवा ले आओ।' बगलवाला ल का कहवा लेने जा चुका था।

मुझे लग रहा था, मैं किसी और ही सभ्यता में पहुँच चुकी हूँ। ये लोग नहीं हैं, 'काल पात्र' में रखे नमूने हैं जिनके दर्शनमात्र से आने वाली पीढ़ियाँ गौरवान्वित होंगी। शरद मुझसे दो घंटे का समय लेकर जा चुका था, उसे औरतों की द्रौपदी के चीर जैसी बढ़ने वाली खरीदारी का आभास था। इस बीच मेरी छात्राओं ने पेपरमेशी और लक ी से बनी कई छोटी-छोटी खूबसूरत चीज़ें खरीद ली थीं। कहवे की भीनी खुशबू पूरी दुकान में फैली हुई थी।

इतनी ढेर सारी खूबसूरती के बीच में मेरी आँखें चौंधिया रही थीं। निर्णय लेना कठिन हो गया था कि किस टुक े को अपने घर का हिस्सा बना लूँ। इसी बीच दरवाज़ा झटके से खुला, शरद अंदर आया। उसके हाथ में फर वाला एक कोट था, जिसे देख कर मुझे 'लेडी माउंटबेटन' की याद आ गयी।

'मेमसाहब, यह कोट कैसा रहेगा? चार घंटे से बाहर ख ा दुकानें गिन रहा हूँ। हजरतबल में कुल पैंसठ दुकानें हैं, यह आज ही मालूम हुआ है। अब आप इसे खरीदिये और छुट्टी कीजिये। आप साहब भी अब थक चुके हैं। क्या नाम है आपका, हज़रत?' दुकानदार की ओर मु ते हुए शरद ने प्रश्न किया।

'गुल मोहम्मद मीर।'

ल कियों का झुंड टूट प ा, 'मैडम, यह कोट तो बहुत बढ़िया है। ले लीजिये, ऐसा कोट दिल्ली में कहाँ मिलेगा?'

'ले लो, बहन, दाम की परवाह मत करो।'

आख़िर मैंने वह कोट खरीद लिया। कोट का दाम तो उसके खरगोशनुमा कॉलर ही वसूल कर रहे थे। शाम को श्रीनगर का मौसम भी सर्द हो गया था। बर्फानी हवाएँ चलने लगी थीं। मैंने कोट पहनकर उसका श्रीगणेश भी कर दिया।

शरद के घर पहुँचे तो अँधेरा हो चुका था। मुझे देखते ही शरद की माँ बोल प ीं, 'किस बाबा आदम के ज़माने का कोट खरीद लायी हो तुम? ऐसा कोट तो मेरे ल कपन के दिनों मे मेरी माँ पहना करती थीं।'

मैंने जलती आँखों से शरद की ओर देखा, वह मुझे देख कर ऐसा खुश हो रहा था जैसे म्यूज़ियम में रखी कोई 'ममी' देख रहा हो। शरद की माँ गर्म-गर्म चाय के प्याले ट्रे में सजा लायीं।

'बेबे, इसे तो गोश्ताबा खिलाओ। इसे मालूम तो हो कश्मीर के पंडित यू.पी. के पंडितों से कितने आगे हैं।'

'आगे क्या, बेटा, अपने-अपने रिवाज़ हैं। हम कश्मीरियों में तो वैसे भी हिन्दू-मुसलमान का कोई ज्यादा फ़र्क नहीं है। यहाँ की पहा ी शंकराचार्य हैं तो तख्ते सुलेमान भी। इस्लामाबाद है तो अनंतनाग नाम भी चल रहा है। पामपुर की ज़ाफरान, श्रीनगर की पेपरमेशी की नक्काशी, कालीनों का बारीक काम, पश्मीने के शॉल और पहलगाम की कशीदाकारी कश्मीरियों के नाम से जानी जाती है; हिंदू-मुसलमान के नाम से नहीं। अखबारों में पढ़ती हूँ तो समझ में नहीं आता, यह किस कश्मीर का जिक्र है? अखबार वालों ने अपना एक ख़याली कश्मीर गढ़ रखा है जहाँ एक पत्थर भी गिरता है तो बम का धमाका महसूस होता है। हमारे कश्मीर में तो अमन-चैन अभी तक पहले जैसा ही कायम है।'

ड्राइंग-रूम के रैक के ऊपर रखी गोल-मटोल प्यारी-सी बच्ची की तस्वीर मुझे आकर्षित कर रही थी। शरद मेरी उत्सुकता भाँप गया।

'वितस्ता मेरी बेटी है। कश्मीर की एक नदी का नाम है वितस्ता। अंजू को पसंद आया, उसी ने रखा है।'

रात बढ़ रही थी। थो े से समय में ही बेबे से बहुत अपनत्व हो गया था। फिर आने का वायदा करके हम लोग वापस डल झील की ओर चल दिये। रास्ते में कोई खास बात नहीं हुई। शरद गम्भीर था। मैंने पूछा था, 'बेबे कुछ बीमार-सी लग रही थीं?'

'हाँ, परेशान हैं। छोटा भाई एक ल की के प्रेम में दीवाना हो रहा है। पढ़ाई-लिखाई छो दी है। सोच रहा हूँ उसे अपने साथ मुबंई लेता जाऊँ।'

डल झील के किनारे पहुँच कर शरद ने हम लोगों से विदा ली।

नाव लेकर अपनी छात्राओं के साथ मैं 'हाउस बोट' की ओर चल प ी। फ्लाइंग जैक, हम्दिया, गुलबहार और शान-ए-कश्मीर की टिमटिमारी रोशनी पानी में मोरपंखी नीलम जैसी झिलमिल कर रही थी। ये सभी डीलक्स टाइप की अव्वल दर्जे की हाउस बोट थीं जिनका किराया फाइव स्टार होटल के किराये से कम नहीं था। इनके पीछे हमारी लैला ख ी थी। काई, सेवार और कू े के ढेर से झील के इस छोर का पानी ढँका हुआ था।

लैला की छत से शंकराचार्य की ओर जाने वाली सीढ़ियाँ साफ दिखाई देती थीं। लैला का शयन-कक्ष कश्मीरी कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना था जिसमें देवदारु की गंध बसी हुई थी और रह-रहकर मुग़ल बादशाहों के 'ख़्वाबगाह' की याद ताज़ा करती थी। पूरी हाउस बोट हमारे नाम से बुक थी।

शयन-कक्ष में रखी 'काँग ी' ने कमरे को खूब गर्म कर दिया था। ड्रेसिंग-रूम का दरवाज़ा खोलते ही मैं जोरों से चौंकी। घुटने से नीचे तक का लबादा, जिस पर जगह-जगह साबुत खरगोश चिपके हुए थे, घेरे पर उनकी पूँछ कुछ इस अंदाज़ में चिपकी हुई थी मानो भागते हुए जल्दी में कट कर गिर गयी हो। मैंने अपने चेहरे को छुआ और जब मेरे हाथों का अक्स आईने में उभरा तो मुझे जोरों की हँसी आ गयी। इस कोट को पहनकर यदि मैं दिल्ली की स कों पर निकलूँगी तो स क के कुत्ते मुझे अपना पुराना शिकार समझकर झपट न प ेंगे या यह समझ कर दिल्ली की स कें खाली न हो जायेंगी कि कब्र में ग ी कोई 'प्रेतनी' बन गयी है।

मैं कोट वापस लौटाने की युक्ति सोचने लगी थी। सुबह दस बजे ही बस से पहलगाम जाना निश्चित था। तीन सौ पचास रुपये की फिसलन जो मैंने इस नमूने की एवज़ में चुकाई थी, बार-बार झल्लाहट के रूप में उभर आ रही थी। इस समय मुझे छात्राओं पर, लैला के खानसामे पर, गुल मोहम्मद पर, शरद पर और सबसे अधिक अपनी बुद्धिमानी पर क्रोध आ रहा था। मैं बार-बार कोट

को उलट-उलटकर देख रही थी, कहीं कोई उध ी हुई सिलाई दिख जाये और मैं साबित कर सकूँ कि यह पहले से ही फटा हुआ था। इसी खींचतान में फर का एक ब ा-सा गुच्छा कटकर मेरे हाथ में आ गया। मुझे ब ी खुशी हुई, लेकिन अगले ही क्षण में निराश हो गयी, कहीं यह फटा कोट ही मेरे गले न लग जाये। कुछ दिन पूर्व ही दिल्ली के पालिका बाज़ार मे घटी घटना याद आ गयी जिसने मेरे भय को और भी दुगुना कर दिया।

बहुत सुन्दर चटक रंगों वाला शलवार-सूट मैंने कई सूटों के बीच से दुकानदार की सहायता से छाँटा था। पालिका बाज़ार की दुकानदारी में बिल की बात करना साँप के बिल को छे ने जैसा ही है। कप े का कोरापन दूर करने को घर में आते ही मैंने उसे पानी में डाल दिया। चटक रंग पानी में शहद जैसे घुल गये, बच गया चितकबरा, भद्दे रंगों वाला कप ा। मैं दूसरे दिन ही दुकानदार के पास पहुँची। उसने साफ इंकार कर दिया - 'ईमान की बात करो, बहनजी, आप भी कमाल करते हो। यह सूट मेरी दुकान का है ही नहीं।' उसके ईमान के आगे मेरे सभी तर्क धराशायी हो गये।

इसी उधे बुन में मेरी आँख लग गयी। सुबह नाश्ते के बाद हाउस बोट का बिल चुका कर मैंने सीधी टैक्सी हज़रतबल के लिए की। ल कियाँ टैक्सी में बैठी थीं, मैं अकेली ही भारी-भरकम पैकेट थामे दुकान के पास पहुँची। दरवाज़ा बंद था। अगल-बगल छानबीन करने के बाद एक सँकरा-सा रास्ता दुकान के बगल से होता हुआ एक चौ े आँगन में जाता दिखाई दिया। मैं सीधी अंदर पहुँच गयी। गुल मोहम्मद चौ े आँगन में चारपायी पर बैठा कहवा पी रहा था।

'अरे बहन, तुम !' कह कर वह झट ख ा हो गया। उसने दुकान का अंदर वाला दरवाज़ा खोला और आँगन की ओर मु कर कुछ कहा। पूरी कश्मीरी तो मैं न समझ सकी लेकिन कहवा और जाफरान मैंने पक लिये।

बात का सूत्र कहाँ से थामूँ, अभी सोच ही रही थी कि गुल मोहम्मद बोल प ा, 'कोट पसंद नहीं आया, बहन ! कोई बात नहीं, वापस कर दो।'

कहवा आ चुका था। मैंने राहत महसूस की। 'हम लोग पहलगाम जा रहे हैं, बाहर टैक्सी ख ी है, आप कहें तो मैं कोट के बदले शॉल ले लूँ।'

'तुम पहले पहलगाम घूम आओ, हो सकता है वहाँ तुम्हें और भी अच्छी शॉल मिल जाये। यह तो तुम्हारे भाई का घर है। जब मन हो, आ जाना।' उसने कोट वाला बंडल मेरे हाथ से लेते हुए कहा।

मेरी आँखें ऊपर नहीं उठ रही थीं। मैं जानती थी कि कोट फटा हुआ है। कहीं कुछ ऐसा घट जाये, यह दृश्य बदल जाये और कोट वापस मेरे हाथ में आ जाये, लेकिन घटना घट चुकी थी, दृश्य बदले नहीं जा सकते थे। मैं स्तब्ध थी।

मैं उठी। गुल मोहम्मद ने आगे बढ़ कर दरवाज़ा खोला, 'रुको, बहन, अपना पता तो देती जाओ। फिरन के मौसम में मैं दिल्ली आऊँगा, तुमसे ज़रूर मिलूँगा।'

मैंने कागज़ के एक टुक े पर अपना पता लिखा और टैक्सी की ओर बढ़ गयी। टैक्सी स्टार्ट हो चुकी थी। गुल मोहम्मद तेजी से टैक्सी की ओर बढ़ा, 'यह तोहफा देना तो मैं भूल ही गया। छोटा-सा तोहफा है, कुबूल करो, बहन।'

मैंने हाथ बढ़ा कर केसर की डिब्बी हाथ में ले ली। मेरी दृष्टि नीची ही थी। गुल मोहम्मद की आँखों को झेलना मेरे लिए सम्भव नहीं था। वे एक कश्मीरी की आँखें थीं - पवित्र और मासूम।

आज मेरे सामने शरद का पत्र और अखबार दोनों ही फैले हुए हैं। अखबार के मैले पन्ने में मोटे-मोटे अक्षर चमक रहे हैं - 'श्रीनगर के हजरतबल इलाके के कुख्यात आतंकवादी गुल मोहम्मद सुरक्षा-बल के जवानों द्वारा मुठभे में मारा गया।'

मेरे अन्दर की चीज़ों को बाहर बढ़ता सन्नाटा और भी गहरा कर रहा है। मेरा गुल मोहम्मद और आतंकवादी ! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मेरा गुल मोहम्मद ऐसा नहीं हो सकता।

अजीब दौर में

डा. भगीरथ ब ोले

फिर किस अजीब दौर में पलने लगे हैं हम,
अनजान बियाबान में चलने लगे हैं हम।

चाहत से बनाया किसी यकीन को मुकाम,
देखे जो इंतजाम, उबलने लगे हैं हम।

चाहा था हमारा भी सितारा बुलंद हो,
ऊँचाइयों के नाम से ढलने लगे हैं हम।

सपनों में रोज पार किये सातों समुंदर,
जागे तो महज़ हाथ ही मलने लगे हैं हम।

कुछ कोशिशों के बाद हिलाया जो हिमालय,
सच है यही कि बीच में गलने लगे हैं हम।

औरों की ख़ामियों पे नज़र तेज जब हुई,
अपने किसी वज़ूद को छलने लगे हैं हम।

था ऐसा जोश, भूल गये अपना होश भी,
ख़ुदगर्ज़ ज़माने सा बदलने लगे हैं हम।

मामला आगे बढ़ेगा अभी

चित्रा मुद्गल

गेट से लगी गुमटी के भीतर, जंग खायी कुर्सी से डंडा टिकाये, खादी वर्दी में ऊँघ रहे चौकीदार ताव` को गाली-गलौज भरे शोर ने सहसा ह ब ा दिया। कानों पर विश्वास करने के लिए उसने अपने ऊँघते शरीर को सप्रयास समेटा, फिर न खुलने के लिए जिद्दिया रही पलकों को पटपटाया और शोर को समझने की कोशिश की। ऊँघ अभी भी उसकी रानों और जूतों में कैद पंजों में दुबकी हुई थी।

शोर स्पष्ट हुआ। गालियों के कुछ कतरे हवा का रुख गुमटी की तरफ होने के साथ ही इधर उछल आये.....साथ थी ताल देती-सी तीखी 'ता '......'ता ' किसी पतरे को पीटने का-सा स्वर....

दिमाग सन्न-सा चौंका। कुर्सी पीछे खींचकर वह फुर्ती से ख ा हो गया। स्वतः से बुदबुदाया, 'अपनाच कॉलोनी में....बाप रे ऽऽऽ!' सुस्ती झटक गुमटी से बाहर निकला। सहसा ख़याल आया कि जरा वक्त पता कर ले। बाँयीं कलाई पर बँधी धुँधले डायल वाली घ ी पर दृष्टि डाली। डेढ़ बजने को था। इतनी रात गये यह शोर....?

ठमककर उसने शोर की दिशा में आहट ली। उसे तीन नम्बर वाली इमारत के बेसमेंट से शोर आता हुआ महसूस हुआ। गेट से तीन नम्बर वाली इमारत का फासला बमुश्किल तीन-चार मिनट पैदल का था। वह हु ककर सरपट भागा। नीचे वाले घरों में शोर पहुँच चुका था। कुछ फ्लैटों में जगहट हो चुकी थी। कई बालकनियों की रोशनियाँ उसके दौ ते-न-दौ ते जग उठीं। कुछ प्रश्न उसकी ओर कूदे।

'गुरखा ऽऽऽ....क्या हुआ? कौन गाली बक रहा है?....क्या तो ता कोई?'
उसने रुक कर किसी को जवाब नहीं दिया, पर जैसे ही तीसरे नम्बर वाली इमारत के बेसमेण्ट में दाखिल हुआ, दृश्य देख कर उसकी आँखें फट गयीं।

मोट्या था। मोट्या के हाथ में एक लम्बा सरिया था। उसी सरिये से वह सक्सेना साहब की सफ़ेद टोयोटा पर 'ता -ता ' प्रहार किये जा रहा था। साथ-साथ गालियाँ....भद्दी....अश्लील !

पहले से ही सहमे ख` चार-पाँच लोगों की ओर से लापरवाह मोट्या की नज़रें जैसे ही उस पर प ी, पलटकर सरिया उसकी ओर तान लिया, 'आगे नहीं बढ़ना होऽऽ....खोप ी टुक`-टुक` कर के छोड़ूँगा....बोत अच्छा घर में नौकरी लगाया ना !....साआऽऽला हारामखोर बोऽ....बोल?.... बोल उसको अबी निच्चू उतर के आने कू? कुतरे का औलाद होऊँ गर मादर....खल्लास नहीं किया.... धक्का दे के निकाला न मेरे कू दरवाजे से? काय को? पूरा पैसा माँगा न इसी वास्ते?.... काट, बोलना अबी अच्छा तरीके से खा ा काट....देखता....मैं....बरोबर देखता....भोत धाँधलसेन किया....अबी सिद्धा होंयेगा वो....ठेर....'

वह तमककर घूमा और पूरी ताकत से लपक कर उसने सरिया कार की 'विंडस्क्रीन' पर दे मारा।

'छन्नऽऽ!' का शोर उठा। किरचें दूर-दूर तक छिटक कर बिखर गयीं, वहाँ ख ी गा ियों के सहारे टिके लोग भयभीत होकर उन गा ियों की आ में दुबक गये। वह अपनी जगह पर से ही बिना हरकत के चीखा, 'मोट्याऽऽ !' उसके दाँत तनाव से भिंच गये। भिंचे दाँतों के सुराखों से गुजरती आवाज़ ने मोट्या को चेतावनी दी, 'सरिया फेंक दे....मैं बोलता सरिया फेंक दे, नई तो सक्सेना सा'ब तेरा तुक ा-तुक ा करके छो`गा....जास्ती मगज मत फिरा....!'

'चुप बे चम्मच !' मोट्या ने होंठों पर बजबजा आये थूक को 'पिच्' से बगल वाली गा ी पर थूका, फिर गर्दन को झटका देकर आँखों तक छितरा आये बालों को पीछे फेंकने की कोशिश की, 'मैं धौंस नहीं खाने का....खा ा काटा न वो मेरा?....बोत चमकाया इस साली के पतरे को.... अब्बी देख हाल....! बोल तेरे सेठ को निच्चू उतर कर आने कू....डर के मारे अजुन तलक ऊप्परच बैइठा हयऽ....आने तो दे निच्चू....खोप ी नई तो ा उसका....कोई पन आगे आया....उसको पन देखेगा...वोऽऽ जा ि या मेमसा'ब पन आयेगी, तो मैं उसको भी नई सो`गा....नई सो`गा....सा'ब

का सामने कैइसी भीगी बिल्ली सरावी बैइठी होती?....बोलने को नई सकती थी क्या?....ताप में होता मैं,....पत्ता था न उसको....!'

मोट्या गा ी का हिस्सा-हिस्सा पीटे जा रहा था। वह जैसे ही मोट्या को धर दबोचने के लिए लपकने को तत्पर होता, पता नहीं कैसे मोट्या को आभास हो जाता और वह पलटकर उसके सामने सरिया तान लेता। वह सिर से लेकर पाँव तक सिवा काँपने के और कुछ भी नहीं कर पा रहा था।

कितने नौकर काम करते हैं इस सोसाइटी में। रोज निकाले जाते हैं, रोज रखे जाते हैं। अकसर यहाँ काम करने वाले लोगों से ही नये नौकर ढूँढकर ला देने के लिए कहा जाता है। उससे भी कहा जाता है। न जाने कितनी बाइयों और छोकरों को उसने काम पर रखवाया है। पर....ऐसा विद्रोही स्वरूप !....

पिछले चार सालों से तो वह खुद यहाँ चौकीदारी कर रहा है। उसने नहीं देखा इतना दुस्साहसी छोकरा। प्रेत-पिशाच लग गया है इसे....या सा'ब लोगों का गुस्सा नई पता है अभी....गा ी का हालत देख के सक्सेना सा'ब पागल सांड सरखा हो उठेगा....नक्कीच !

वह मोट्या के बुरे परिणाम की भयंकरता से सूखे पत्ते-सा काँप उठा। लगा जैसे उसके दुबले-पतले शरीर पर एकाएक जू ी का हमला हो उठा है !....कैसे रोके इसे?

मोट्या के बूढ़े नाना का मिचमिची आँखों वाला झुर्रियों-पटा चेहरा उसकी आँखों के सामने कौंध गया....बूढ़ा मोची-गिरी करता है, पेरी क्रासरोड के फुटपाथ पर एक छाँवदार पे के नीचे। एक जर्जर छतरी को भारी पत्थर के सहारे अटकाकर, टाट के मटमैले टुक पर, चम की कतरनों का ढ़ेर पसारे, जंग लगे डिब्बे में कीलें-काँटे सरियाये, वह राहगीरों की चप्पलें-जूते मरम्मत करता रहता है। उस दिन उसकी बरस भर पुरानी कोल्हापुरी चप्पल का अँगूठा उख गया था और उसकी निगाह इस बूढ़े मोची यानी मोट्या के नाना पर प ी थी। वह पाँव घिसटता-घिसटता उसी के पास चप्पल बनवाने पहुँच गया था। बूढ़े ने छूटते ही पूछा था, 'सिलाई मारूँ कि किल्ला ठोकूँ?'

'सिलाई मारना।' उसने मजबूती के ख़याल से उसे हिदायत दी थी। बूढ़े ने डोरा खोजते हुए उससे पूछा था, 'मिलिट्री में काम करते हो?'

'वाचमैन हूँ।' उसने गर्व से अपनी वर्दी को अपनी ही नज़र से छुआ तथा सराहा और बगैर बूढ़े के कुछ पूछे ही अपने बारे में बताने लगा था.....कि वह पच्चीच-पच्चीस माले की इमारतों वाली कॉलोनी में 'वाचमैन' है। बूढ़ा उसकी बातों से प्रभावित लगा, उसका अंदाज उसे इस बात से हुआ कि बूढ़े ने अँगूठे की मजबूत सिलाई के उपरांत उस चप्पल की सारी तनियों को पूरी ताकत से खींच-खींचकर उनकी मजबूती का निरीक्षण किया और बगैर उसकी इज़ाज़त के उन तनियों पर भी टाँके लगा दिये जो उसे कुछ कमजोर लगीं।

'कितना कमा लेते हो दिन में?' उसने स्वर में सामर्थ्य-भर सहानुभूति उ लकर बूढ़े से पूछा।

'कमाई किदर?' बूढ़े ने हताशा भरे स्वर में अपनी मिचमिची आँखें उसकी ओर पलांश उठाकर प्रतिप्रश्न-सा किया, 'बोत मुश्किल से....दोन-ढ़ाई रुपया किल्ला-काँटा का खर्चा निकालकर के मिलता हय। ऐरियाच ऐइसा है। सा'ब लोग चप्पल-जूते किदर बनवाते....टूटा कि तरप नया खरीदते....ताकत होती तभी मैं फेरी लगाता होता। जूना-पुराना चप्पल-जूता खरीदकर मैं उसका मरम्मत-बिरम्मत करके स्टेशन रोड का फुटपाथ पर बेच लेता होता....कमाई तो तभी होती....अब्बी तो खाने को पन नई पुरता !'....बूढ़े ने भी उसाँस भरकर अपने पैबंद उघा । चप्पल उसकी ओर बढ़ाई और फिर बोलने लगा, 'जास्ती चलने-फिरने को नई सकता न....इसी के वास्ते इदरीच बैठता....ये बोत पोश एरिया है न ! इधर का लोग पैदल कम, गा ी-बा ी में जास्ती चलता हय....गिराक किदर से मिलेंगे?'

बूढ़े ने यह भी बताया कि गुज़ारा होता नहीं है, करना प ता है। घर पर एक नाती है। पंद्रह का हो रहा है वह, और काम-धाम कुछ करता नहीं है। ल की थी....उस की माँ....उसके होते ही उसके बाप ने उसे छो कर दूसरी शादी बना ली। जवान ल की कब तक सिर पर बैठाये रखता ! एक दोहाजू ल के के साथ उसे घर बैठा दिया। दोहाजू, बस, बच्चा रखने को राजी नहीं था, सो ल के को उसे अपने ही पास रखना प ा....नाम है मोट्या। उसने ब ी कोशिश से उसे 'मुनसीपालिटी' के स्कूल में छठी क्लास तक पढ़ाया। आगे वह पढ़ना नहीं चाहता था। स्कूल से भाग-भाग आता। एकाध घरों में भां ी-कटका के काम पर भी रखवाया मगर वह हर बार काम

छो कर घर बैठ जाता है। कहता है औरतों वाले काम वह नहीं करेगा। मोचीगिरी भी नहीं करना चाहता। उसे यह दुनिया का सबसे घटिया काम लगता है। बूढ़े ने ब ी कोशिश की कि वह डिब्बा-बाटली खरीदने और बेचने के धंधे में ही लग जाये, पर वह भी एकाध रोज भटक-भुटककर छो बैठा, यह कहकर कि डिब्बा-बाटली का धंधा बहुत मंदा है। और प्राफिट भी बोत कम है। लोग डिब्बे-बाटली वाले को बियर, व्हिस्की की बोतलें नहीं बेचते। चार-पाँच महीने का भंडार इकट्ठा करके, गा ी में भर कर सिद्धा दुकान पर जाकर बेचते हैं। उधर जास्ती प्राफिट मिलता ! दस पैसा भी काय-कू छो ें? पेट्रोल मँगता तो फूँकने दो न।

'समझ नई प ता कि छोकरे के नसीब में क्या है !' बूढ़े ने उसके हाथ से पैसे लेते हुए भर्राये गले से अपनी बेबसी जाहिर की। उसके पैरों में चप्पल फँसाते एकाएक वह चिरौरी भरे स्वर में गलगलाया था. . . .

'उसको किदर काम को लगाओ न !' . . . और बूढ़े की प्रार्थना के साथ ही एकाएक उसे सक्सेना साहब का आग्रह याद हो आया था जिसे वे गेट से निकलते हुए, उसका सैल्यूट स्वीकारते हुए पिछले पाँच-छः दिनों से लगभग रोज ही दुहरा रहे थे कि उन्हें एक गा ी धोने वाले ल के की सख्त जरूरत है जो टाइम का पाबंद हो। यानी उनके निकलने के समय से पूर्व ही दोनों गा ियाँ धुली-धुलाई हों। जिसमें से सफेद 'टोयोटा' उनकी है और उसी का इस्तेमाल वो रोज करते हैं। 'प्रीमियर पद्मिनी' को उन्होंने अपनी मेमसाहब के उपयोग के लिए रख छो ा है। उसमें सफर तो वे तभी करते हैं जब 'टोयोटा' गैरज में होती है।

गा ी धोने वालों की वैसे तो कॉलोनी में कमी नहीं है, पर सुबह सभी को अपनी-अपनी गा ियाँ धुली चाहिये। और यह काम अधिकतर वहीं काम करने वाले रामा एवं बाइयाँ करती हैं। एक साथ कई-कई घरों की गा ियाँ धोने का काम पक लेने की वजह से अक्सर गा ियाँ समय से नहीं धुल पातीं। पिछले रामा को सक्सेना साहब ने काम पर से निकाला इसी वजह से है। उनके निकलने का समय हो जाता और रामा बालटी और पोंछा लिए गा ी पोंछ रहा होता। बगैर धुली गा ी में वह चल नहीं सकते। गा ी को लेकर उन्हें ब ा वहम था। बगैर धुली गा ी में जिस दिन भी वे फैक्टरी पहुँचे, कोई न कोई लफ ा वहाँ मौजूद पाया।

उसने बूढ़े से कह दिया था कि कल ठीक नौ बजे सुबह वह मोट्या के साथ इसी जगह पर प्रतीक्षा करता हुआ मिले। बूढ़े ने बहुत सारे आशीष वचनों से उसे लाद दिया था. . . .

मोट्या से मिलकर सक्सेना साहब काफी प्रसन्न हुये।

ताव े और मोट्या, दोनों को ही उन्होंने आश्वस्त किया था कि सामान्यतः कार धोने के लिए जितनी पगार औरों को मिलती है उससे वे बीस रुपये मोट्या को अधिक देंगे। पर इस शर्त पर कि वह औरों का काम चोरी-छिपे भी नहीं पक ेगा। हाँ ग्यारह बजे के बाद वह जो चाहे कर सकता है। साथ उन्होंने यह प्रलोभन भी पेशगी टिका दिया था कि मोट्या उनके यहाँ अगर ईमानदारी से काम करता रहा और टिका रहा तो वे उसे साल-डेढ़-साल बाद निश्चित ही अपनी फैक्टरी में लगवा देंगे। तब उसे ढाई सौ रुपये महीने पगार मिलेगी। मोट्या भी इन मर्दों वाले काम से खुश था। बूढ़ा उसके एहसान की दुहाई देता न थकता, और जब भी ताव े उससे अपनी घिसी चप्पल या खस्ता हाल जूतों की मरम्मत करवाने के लिए पहुँचता, लाख आग्रह करने के बाद भी वह उससे बनवायी लेने के नाम पर कुछ भी न लेने का ही हठ ठाने रहता।

'तुम मेरा छोकरा सरखा है. . . .बोत-बोत उपकार किया अपने पर. . . .मोट्या काम से बोत खुश है. . . .' वह स्पष्ट देखता बूढ़े की चीकट-धोती का एक कोर अनायास उसकी मिचमिची आँखों का भरापन सोखने लगता ! उसका जी भर आता।

उस दिन. . . .वह डे-ड्यूटी में था। बारह-साढ़े-बारह का समय रहा होगा। सहसा उसकी नज़र तेजी से गेट से बाहर होते मोट्या पर प ी थी। उसने गुमटी के भीतर से ही उसे आवाज़ लगायी थी।

'कहाँ लपका जा रहा है, हाँ ! दिखता नहीं है आजकल?'

वह पलटा और उसके करीब आकर ख ा हो गया, 'इदरीच।'

'बूढ़ा बाबा कैसा है?'

'मस्त।'

'तू?'

'मैं पन मस्त !' वह मु कर चलने को तत्पर हुआ। उसने स्पष्ट लक्ष्य किया कि वह कहीं जाने की ह ब ी में है। पर वह उससे बातें करने के मूड में था। शायद उससे उसके सा'ब और उसकी मेमसा'ब के दरमियान चल रहे मनमुटाव के विषय में भेद लेना चाहता था। कॉलोनी में उ ा हुआ था कि आजकल सक्सेना साहब किसी शायरा के चक्कर में हैं और मेमसाहब से अलग होना चाहते हैं... पर मेमसाहब उन्हें तलाक देने को राजी नहीं हैं....

'चलता मैं....जरा घाई में है।' मोट्या ने बेसब्री दर्शायी।

'ठेर ना, काय की घाई?' उसने मोट्या के कंधे से लटका एअर-बैग पक कर उसे रोका, 'ये बैग ले के....?'

'मेमसा'ब ने 'आराम वाइन शॉप' से एक क्रेट चिल्ड बियर का लाने कू बोला है, वोइच इसमें भरके....आज किट्टी पार्टी हय....सारा मेमसा'ब लोग आ गयेला है। मेरे को देर होयेगा ना तो बोत वांदा होयेगा....मेमसा'ब....!' कहता हुआ वह तीर-सा गेट से बाहर हो गया।

वह अनायास अपने चेहरे पर फैलती अर्थपूर्ण मुस्कराहट को ब ी देर तक खिंची हुई महसूस करता रहा था। ब ी देर बाद पार्टी के तामझाम से निवृत होकर जब मोट्या उससे मिलने आया था, ब ा संतुष्ट और प्रसन्न था। उसने बताया था कि दोपहर में वह पूरा वक्त मेमसा'ब के काम पर होता है। जैसे सिगरेट खत्म हो गयी है तो ला देना, बियर के क्रेट लाना और फटाफट बोतलों को ठिकाने लगाना या 'नीलम' से सींक कबाब या फिश-रोल्स ले आना या लिकिंग रोड जाकर 'ब्यूटी आर्ट' में मेमसा'ब के कप े डाल आना और ले आना....मेमसा'ब दोपहर का खाना तो उसे खिलाती ही है, टिप भी खासी थमाती रहती है। पैसे वह ईमानदारी से बाबा के हाथ में रखता है। हाँ, मेमसा'ब ने उसे हिदायत दे रखी है कि यह सब उनका व्यक्तिगत मामला है....किसी को उससे खबर नहीं लगनी चाहिये।

'फिर अपने को क्या, अपने को फकत अपने काम से मतलब'....मोट्या ने ब े सयानेपन में डूबकर कहा उससे। हालाँकि उससे वह घर में चल रहा सारा कच्चा चिट्ठा व्यौरेवार बता गया। मेमसा'ब की स्थिति से मोट्या ब ा दुखी लगा उसे। मोट्या की बातों से यह भी जाहिर हुआ कि उसके मन में मेमसा'ब के प्रति सम्मान ही नहीं, लगाव भी पैदा हो गया है। और उसी मात्रा में सा'ब के प्रति एक अजीब-सी क वाहट !

उसने उसे ब े अनुभवी की तरह गुरुमंत्र पिलाया था, 'तू ठीक कहता है, तेरे को क्या? हाँ....फकत काम से मतलब, पगार से मतलब। किसी के लफ े में नई प ने का। हाँ ! ये बिल्डिंग में रहने वाले मियाँ-बीबी जो होते हैं न....अलगीच होते हैं। इनका कोई पन काम एक-दूसरे की मालूमात में नई होता है। फकत इतनाच कि वो मियाँ-बीबी है अऊर एकच घर में रहते हैं।

आठ-दस दिन मुश्किल से हुए होंगे। वह गेट पर मुस्तैद ख ा हुआ था कि सक्सेना साहब ने बगैर उसके सैल्यूट पर ध्यान दिये सख्त आवाज़ में पूछा था, 'मोट्या कहाँ हैं?'

वह कार की खि की से तनिक बाहर तनी उनकी गर्दन के करीब आकर ख ा हो गया था, 'काम पर नहीं आया क्या सा'ब?'

'दो रोज से बास्टर्ड ने शक्ल नहीं दिखाई है....लगता है हरामजादे को मेमसाहब से टिप जरा ज्यादा मिलने लगी है....भूल ही गया है कि मैं बगैर धुली गा ी के बाहर नहीं निकल सकता। कल भी मैंने आया से गा ी धुलवायी, आज भी....'

वह उनके उबलते क्रोध से सकपका-सा उठा। समझ में नहीं आया कि क्या कहे।

'छोकरा सिद्धा है सा'ब !....जरूर बीमार प ा होयेगा....पता करता मैं....'

'पता करो' उनका पाँव एकाएक एक्सीलेटर पर दबा। गा ी सर्र से गेट से बाहर हो गयी।

वह मन ही मन झुँझलाया। अजीब हैं ये सा'ब लोग ! एक तो नौकर खोज कर दो, ऊपर से उसका अता-पता भी रखो। कुछ हो गया तो सारा गुस्सा उसी पर....अच्छी नौकरी है।

मोट्या के न आने की वजह उसे सरासर बूढ़े बाबा की तबीयत ग ब होना लगी। वह आशंका से भर गया। जरूर बाबा मरने-मराने को होगा। नहीं तो मोट्या खा ा करने वालों में से नहीं है। कम से कम वह मेमसा'ब को तो आकर जरूर मिल जाता। कोई खबर नहीं है, इसका मतलब है कि....और अगर सचमुच बूढ़े को कुछ हो गया तो मोट्या....!

वह सहसा मोट्या के इस तरह अनाथ हो जाने की पी ा से अन्यमनस्क हो उठा।

माँ है उसकी तो वह भी न होने के बराबर। दूसरे मर्द से उसको दो बच्चे हो गये हैं। बच्चे होने से पहले जब-जब वह मिलने आती थी, मर्द से चुराकर कुछ कप -लत्ते, कुछ रुपये मोट्या के लिए बूढ़े बाबा के हाथों में टिका जाती थी। मोट्या ने एक बार उसकी माँ के बारे में पूछने पर बताया था, 'उसको लगता है कि मैं जन्मकाच पनवती हय....भलामानुस बनने को नई सकता.... झोंप पट्टी का गुंडा बनेगा....उसका बच्चा लोग अच्छे शाणा को सीखने जाते हय....साथ लेकर नई आती....सोचती होयेगी न....मेरे साथ कुछ गंदा-बिंदा बात सीखेगा तो'....?

मुश्किल से उसका घर खोज पाया था। पर जिस बात की आशंका थी उसके विपरीत, मोट्या खटिया से लगा बुखार में तप रहा था। बाबा धंधा छो के उसके सिरहाने बैठा था। उसे देख कर मोट्या और बाबा के चेहरे पर दप्प से रौनक फूटी।

'मेमसा'ब बोत हैरान होगी न !....बाबा से मैं बोला कि तुमको खबर देने से मेमसा'ब को पत्ता प जायेगा कि मैं ताप से हूँ। पत्ता प गा तो नक्कीच देखने कू आती....लई प्रेमालू हय वो.. ..पन बाबा....मेरे को सो के हटताच नई....'

वह सकते में आ गया। मेमसा'ब के प्रति मोट्या की माया देख कर। ब ी देर तक बस बैठा उसकी बीमारी और दवादारू के बारे में ही उससे और फिर बाबा से बतियाता रहा। हिम्मत ही नहीं प ी कि सक्सेना साहब के चढ़े-तेवरों के विषय में बता दे। और यह भी कि जिस मेमसा'ब की याद में वह मरा जा रहा है, वह एक बार नहीं, कई-कई दफे उसके सामने से 'सरर' से गुजर गई हैं.... किसी ने पूछा भी तो वो है सक्सेना साहब ! क्योंकि वे बगैर धुली गा ी के घर से बाहर नहीं निकल सकते....गा ी के न धुल पाने की नाराजगी के साथ-साथ उसे सक्सेना साहब के कुछ अधिक ही मोट्या पर भ के होने की वजह एक और भी लगी, जो उनके व्यंग्यात्मक लहजे से साफ जाहिर हो गयी थी कि मोट्या के द्वारा मेमसाहब की अधिक खिदमत उन्हें सख्त नागवार गुजर रही है....

मोट्या अभी बच्चा है। ब लोगों के चोंचलों से नावाकिफ। इस उमर में तो कई छोकरे पक्की मिट्टी से पक जाते हैं, पर वे दस घरों का काम छो और पक कर ही यह दुनियादारी सीख पाये हैं। मोट्या का तो बमुश्किल यह दूसरा घर है। और वह यह नहीं जानता कि इमारतों में रहने वालों के घर को कभी उसे अपना घर नहीं समझना चाहिए....मोट्या का मेमसा'ब के प्रति यह लगाव !....उसे मोट्या के कोमल मन का भ्रम तो ना जरूरी लगा। सुबह सक्सेना साहब से हुई भेंट का विवरण वह उसके समक्ष ज्यों का त्यों बयान कर गया....

सुन कर मोट्या खिन्न हो उठा, 'सा'ब तो ऐइसा हैइच पन....मेमसा'ब....!'

वह ब ी देर तक टकटकी लगाये छत के पतरे को ताकता रहा था। मेमसा'ब के द्वारा उसकी खोज-खबर न लिये जाने का उसे बेहद दुख हो रहा था। यह तो उसे पता था कि घर तो उन्हें पता नहीं है अतः घर तो वे किसी हालत में उसे देखने पहुँच नहीं सकतीं पर....इतना विश्वास था कि वे ताव से जरूर उसके बारे में पूछेंगी....मेमसा'ब उसे अपनी ज़िन्दगी में देखी गयी उन तमाम औरतों से अलग लगी थीं....पर....

मेमसा'ब की बातें उस घ ी उसे याद हो आयी थीं, 'मुझे तो बस कहने भर को घर मिला है। यह सारी मौज-मस्ती तो बस वक्त काटने की है....सा'ब कहने को हस्बैंड हैं और मैं कहलाने को बीबी....कभी-कभी जो घर नहीं आते न !....उसी के फ्लैट में रहते हैं। नयी गा ी खरीद के दी है उसे। ग्रीन कलर की फियेट आती है न अक्सर उन्हें लेने....'

'किसी दिन ड्राइवर की आँख बचाकर मैं पेट्रोल की टंकी में किलो भर शक्कर डाल देगा... गा ी की छुट्टी....!'

मेमसा'ब खिलखिलाकर हँस प ी थी, 'तू इतना ख़याल रखता है मेरा....तुझे मैं अडॉप्ट कर लूँगी।'

वह उनके इस अपनेपन से खिल आया था। कभी-कभी वह उन्हें मेमसा'ब न पुकार कर मम्मी जी कहकर पुकार लेता था। हालाँकि मेमसा'ब के बच्चे नहीं थे। शादी को ही मुश्किल से चार-पाँच साल हुए होंगे तो....पर वे उसके मम्मीजी कहने से खुश ही दिखीं। वरना वह कभी उन्हें पुकारने की हिम्मत न दोहराता।

चलते समय खिन्न मन से मोट्या ने कहा था कि वह सा'ब और मेमसा'ब को उसके बिस्तर से लगे होने की खबर कर दे और खबर न कर पाने की मजबूरी भी स्पष्ट कर दे।

उसने दोनों को ही अलग-अलग खबर कर दी थी। सा'ब ने अश्वसनीयता से हुँ-हँ भर किया था। मेमसा'ब उसके बुखार की बात सुनकर सचमुच दुखी हुईं, 'उससे कहना कि जब एकदम ठीक हो जाये तभी काम पर आये।' फिर आहिस्ता से ब` आत्मीय स्वर में पूछा था उन्होंने, 'पैसों-रुपयों की जरूरत हो मोट्या को तो ले जाना मुझसे।'

दे देने और ले लेने में ब ा फ़र्क है है नीयत का। उसे मेमसा'ब की कुछ क्षण पहले की सहानुभूति घ ियाल के आँसू प्रतीत हुए थे। पर....मोट्या है कि मेमसा'ब पर अँकुआई अपनी आस्था को तिल मात्र भी इधर से उधर नहीं खिसकाना चाहता था....

पाँचवें रोज मोट्या पूर्ववत् अपने काम पर पहुँचा तो वापसी में उससे मिलता हुआ गया। उसने उससे मिलते हुए जाने को कहा ही था। क्योंकि पिछले दिन उसने दूसरे वाचमैन से सुना था कि साहब को गा ी धोने के लिए नया छोकरा चाहिये। उसे भय था, कहीं ऐसा न हो कि मोट्या काम पर पहुँचे और सक्सेना सा'ब उसे काम से बर्खास्त कर दें। किंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बस, सक्सेना साहब ने उसे चेतावनी भर दी कि अगर आइंदा वह बीमार प` तो पहले से ही काम पर न आ पाने की खबर करवा दे, ताकि वे किसी तरह मैनेज कर लें।

मोट्या की दिनचर्या हमेशा की तरह अपना ढर्रा पक चुकी थी। लेकिन पहली को....पगार के दिन अचानक वह गुस्से में बिफरता हुआ उसकी खोली पर पहुँचा था। कुछ न कर पाने की विवशता, क्रोधाग्नि में फनफनाती हुई उसकी आँखों में पनिया रही थी, 'मेरा चार दिवस का खा ा काट लिया....फरेब करके थो ा मैं घर पर मस्ती मारता होता !....खा ा के वास्ते मैं ल ाई किया तो मेरे को थप्प चढ़ा के दफा हो जाने कूँ बोला....धक्का मार के घर से बार कर दिया....सब समझता मैं....हरामखोर ने काय का वास्ते हकला मेरे को, उसका मर्जी था....मैं उसका रखैल का घर में चौबीस घंटे के वास्ते काम क् रे जाऊँ....मैंने साफ ना पा ी....फकत गा ी धोयेगा.... खाना-बीना नई पकायेगा....अऊर जबी थप्प मारा....मेमसा'ब पास मेच पर ख ी होती.... धक्का दे के बार किया....पास मेच पर ख ी होती....सा'ब का हाथ नई पक ने को सकती थी? ....नई बोलने को सकती थी कि काय को खा ा काटने का ! कितना काम मैं फोकट मेच करता था....!

'छो न....जो हुआ सो हुआ....ये सा'ब लोगों से झग ा-बिग ा करके फायदा नई....'

'मैं देखेगा हलकट को....दूसरा छोकरा कैइसा गा ी धोयेगा, वो पन देखता....हाथ तो लगाना दो....मैं....!' वह प्रतिशोध से दाँत किटकिटाते हुए फफककर रो प ा था।

ब` अपनेपन से तसल्ली देते हुए उसने समझाया था, 'एक काम सो ो हजार मिलता इदर.. ..काय को मगज खराब करता....मैं एक-आध दिन में तेरे को नये काम पर लगवा दूँगा.... ईमानदार सरवेंट की बोत डिमांड हय....ये साब लोग से उलझ के फायदा नई....फिर मेमसा'ब का क्या ! हय तो वो उनका बीबीच....कैइसा बोलेगी सा'ब के खिलाफ?....उनकाच पैसा पर मस्ती मारती न !....इतनाच तकलीफ है तो सा'ब को छो कर काय को नई चली जाती?'....वह सब समझ रहा था। सा'ब के क्रूर व्यवहार से मोट्या को जितना दुख पहुँचा है, उससे कहीं ज्यादा गहरी ठेस लगी है मेमसा'ब की लगातार चुप्पी से। उसका कोमल मन....मेमसा'ब को कभी-कभी 'मम्मी' कहकर पुकारने की ललक....पर....! खा ा काटे जाने और चाँटा खाने का दुख इतना असह्य इसी वजह से हो उठा है....

मेमसाहब के व्यवहार की उसके द्वारा की गई आलोचना पर मोट्या ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। कुछ देर मुँह सिये बैठा उसकी बातें सुनता रहा। फिर चलने के लिए उठ दिया, 'चलता मैं !'

उसने तो नहीं पर उसकी बीबी ने जरूर मोट्या से और बैठने का आग्रह किया और लगभग जिद्द-सी की कि वह खाना खाकर जाये, पर मोट्या था कि बिल्कुल नहीं रुका। खोयी-खोयी-सी मनोदशा में लिपटा खोली से बाहर हो गया।

पिछली बातों और घटनाओं का सिलसिला एकाएक इस घट रही वारदात से जु गया। वह चौंका।

....उसके आसपास तमाम आवाज़ों की भी इकट्ठी हो गयी थी। वे आवाज़ें उसे ललकार रही थीं - वाचमैन रक्खा किस लिए है? एक अदना-सा छोकरा लाख-डेढ़ लाख की गा ी दनादन पीटे जा रहा है और वह है कि रात पाली के बावजूद, आराम से गुमटी में खुर्राटे भर रहा था? अरे

सब इसकी मिलीभगत से होता है....! इतनी जोर-जोर से गा ी पीट रहा है....भुरता बना कर रख दिया ! सबको सुनाई दिया, इसको कैसे नहीं सुनाई प ा। डिस्मिस करने कू माँगता सोसायटी को....इतना पगार हम लोग गुरखा लोगों को काय के वास्ते देते हैं? इस वास्ते कि गुंडा लोग बाप का माल समझकर घुस आयें अऊर लूट ले जायें?

उसे आश्चर्य हुआ। मोट्या के हाथों में लपलपाते सरिये ने उपस्थित लोगों की हरकतों को स्तब्ध कर रखा था, पर उनकी ज़ुबानें पूरी नहीं हो रही थीं....कि कोई लपककर मोट्या को धर ले। पक -धक का काम उनका नहीं है, ठीक ही कह रहे हैं....वाचमैन काय के वास्ते रखा है?

'साले सब माऽऽ....!' उसने मन ही मन करारी गाली उछाली उन सब की ओर....और मोट्या को थो ा असावधान पाकर झपटा उसकी ओर....मगर उसकी फुर्ती उसकी ओर पलटकर तन गये सरिये की वजह से ठिठक गयी बस, वह मुँह से मोट्या को बेअसरदार चेतावनी देता रहा।

तभी उसने सुना कि सक्सेना साहब इधर नहीं थे। मेमसाहब अकेली थी ऊपर। मेमसाहब को इस घटना की खबर दी गयी तो वे सन्न रह गयीं। पर वे अकेली नीचे उतरकर नहीं आयीं। उन्होंने पहले सक्सेना साहब को फोन पर इस वारदात की इत्तला दी। सक्सेना साहब ने इधर के लिए निकलने से पहले पुलिस को फोन पर खबर दी, और मेमसाहब को आश्वासन दिया कि वे फौरन पहुँच रहे हैं। किंतु उनके और पुलिस के पहुँचने तक और मेमसाहब के नीचे उतरने तक तो गा ी पिचककर डिब्बा हो गयी थी....।

मेमसाहब, पुलिस और सक्सेना के पहुँचने से मिनट भर पहले ही नीचे उतरीं....स्लीपिंग गाउन में....बदहवास-सी। सुर्ख आँखें और सूजे हुए पपोटों में।

'मोट्या !' वे लगभग चीखी थीं। गा ी की दुर्दशा और मोट्या की खुँखारियत से उनकी आँखें फट गयीं। ऊपर बैठे हुए संभवतः मोट्या की कारगुज़ारी का उन्हें अनुमान नहीं हो पाया था....कि इस हद तक....

मगर पल भर में ही वे जैसे सारी स्थिति के प्रति सतर्क हुईं और सबके मना करने के बावजूद, सरिया ताने हुए मोट्या की ओर निडर भाव से आगे बढ़ीं। लोगों के साथ-साथ वह भी सशंकित हो उठा, मोट्या का यह रौद्र रूप आज मेमसा'ब का माथा फो े बिना शांत नहीं होने का....उसने स्पष्ट लक्ष्य किया, हाँफते हुए मोट्या ने सरिये वाला हाथ लगभग पूरी ताकत से आक्रामक मुद्रा में तान लिया....उसका चेहरा....पसीने से लथपथ थर्रा रहा था, बल्कि पूरा शरीर ही पत्ते की तरह काँप रहा था।

मगर सारे लोग यह देख कर दंग हो उठे। मेमसाहब ने उसके निकट पहुँचकर आहिस्ता से उसके तने हुए हाथ से सरिया ले लिया। मोट्या ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। लटकी हुई बाँहें और झुकी गर्दन से पाँव के नीचे बिछी किरची को घूरने लगा।

'इतनी हिम्मत कहाँ से आयी रे तुझमें?' उन्होंने भर्राये कंठ से बुदबुदाकर पूछा।

मोट्या सहसा फफकता हुआ घुटनों में मुँह देकर बैठ गया, 'तुमने खा ा कटवा दिया न मम्....मेम....अपने सामने चाँटा....!'

उसे हथियार फेंकता देख भी दौ प ी।

दिल का मरहम न मिला, जो मिला सो गर्जी।
कह कबीर आसमान फटा, क्यों कर सींवे दर्जी।।

छिन हीं चढ़े छिन ही उतरे, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजरे बसे, प्रेम कहावे सोय।। **कबीर**

भूख

जितेन्द्र 'जौहर'

कुत्ते को रोटी खिलाता देख कर
एक बूढ़े भिखारी ने
साहब के आगे हाथ फैलाया
याचनापूर्वक गि गि ाया।

तभी साहब ने मुँह खोला
भिखारी को टरकाते हुए बोला -
"जानते हो. . . .देशी घी से सनी है,
ये रोटी तो सिर्फ़ 'कुत्ते' के लिए बनी है।"

इतना सुनते ही -
वह भूखा भिखारी
अपने दोनों घुटने और हाथ
ज़मीन पर टेक कर
एकदम तन गया,
और अगले ही पल
करुण स्वर में बोला -
"लीजिये. . . .बाबू ऽऽ जी,
अब मैं भी 'कुत्ता' बन गया !!"

इस घटना में -
भूख जीती है, इंसानियत हारी है
हे अन्नदाता !
तेरी पचास ग्राम की रोटी
पचास किलो के आदमी पर भारी है !

क्या रोक पाई मैं तुम्हें....?

दीपमाला वर्मा

बासंती धूप तले, ओस की बूँदों के बीच
सद्यः स्नान कर, सोलह श्रृंगारों से सँवर।
अनसुनी शहनाईयों की भैरवी से सहम
नव ब्याही दुल्हन की लाज से भर।
सौन्दर्य की लाल चादर ओढ़, जो तुमने कहा अकस्मात्
'तो अब चलूँ मैं !'
असहाय, अचम्भित जिज्ञासा सी मौन
क्या रोक पाई मैं तुम्हें?

रिश्तों की माप तौल पर
सम्बन्धित तुमसे मैं अनायास।
भावनाओं से जु ी, अपनों सी बँधी
स्नेह की आगोश में, अपेक्षाओं से विरक्त।
साँसों की गोधूली में, जो तुमने कहा अकस्मात्
'तो अब चलूँ मैं !'
निःशब्द, बेलगाम उद्‌गारों से व्यथित
क्या रोक पाई मैं तुम्हें?

भूली यादों की कुसुम लताओं से ढकी
तुम्हारी तस्वीर गोद में लिये आज।
जो ढूँढती रही तुमसे बन्धन के मायने
रिश्तों के पर्यायवाची लगे असीमित।
बेटी, बहन, सखी या कौन
या रेशमी राखी की डोर थामे, मेरी प्रिया, मेरी ननद।
शीशे की पारदर्शिता से निकल, जो तुमने कहा अकस्मात्
'तो अब चलूँ मैं !'
अविरल, अनायास बहते अश्रुओं से नमित
क्या रोक पाई मैं तुम्हें?

विदा माँगती तुम, शाश्वत् सत्य के पार
जीवन की बेला में, है साँसों का अंतिम प ाव।
अनकही असंख्य बातें, जो विवश कह न सकी तुम्हें
मन बोझिल आज, हैं भावनायें लाचार।
रीता हृदय, दर्द से करता हाहाकार
सतरंगे रिश्तों से सजी, तुम आज विरक्त साकार।
अलविदा माँगते आँचल फैला, जो तुमने कहा अकस्मात्
'तो अब चलूँ मैं !'
माँ सी आशीष लिये, विदा देती हूँ तुम्हें आज।
अखण्ड, सौभाग्यवती, सदा सुहागिन सखी
आज चाहते हुये भी,
क्या रोक पाई मैं तुम्हें?

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास

पूर्णिमा वर्मन

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भारत के इतिहास के बदलते हुए स्वरुप से प्रभावित था। स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता की भावना का प्रभाव साहित्य में भी आया। भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा था। आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अँग्रेजी और पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और जीवन में बदलाव आने लगा। ईश्वर के साथ-साथ मानव को समान महत्व दिया गया। भावना के साथ-साथ विचारों को पर्याप्त प्रधानता मिली। पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और छापेखाने के आते ही साहित्य के संसार में एक नयी क्रांति हुई।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में गद्य का विकास

आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास केवल हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहा। पूरे देश में और हर प्रदेश में हिन्दी की लोकप्रियता फैली और अनेक अन्य भाषी लेखकों ने हिन्दी में साहित्य रचना करके इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

हिन्दी गद्य के विकास को विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है।

१. भारतेंदु पूर्व युग	१८00 ईस्वी से १८५0 ईस्वी तक
२. भारतेंदु युग	१८५0 ईस्वी से १९00 ईस्वी तक
३. द्विवेदी युग	१९00 ईस्वी से १९२0 ईस्वी तक
४. रामचंद्र शुक्ल व प्रेमचंद युग	१९२0 ईस्वी से १९३६ ईस्वी तक
५. अद्यतन युग	१९३६ ईस्वी से आज तक

भारतेंदु पूर्व युग

हिन्दी में गद्य का विकास १९वीं शताब्दी के आसपास हुआ। इस विकास में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस कॉलेज के दो विद्वानों लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने गिलक्राइस्ट के निर्देशन में क्रमशः प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तकें तैयार कीं। इसी समय सदासुखलाल ने सुखसागर तथा मुंशी इंशा अल्ला खां ने रानी केतकी की कहानी की रचना की। इन सभी ग्रंथों की भाषा में उस समय प्रयोग में आनेवाली खड़ी बोली को स्थान मिला।

आधुनिक खड़ी बोली के गद्य के विकास में विभिन्न धर्मों की परिचयात्मक पुस्तकों का खूब सहयोग रहा जिसमें ईसाई धर्म का भी योगदान रहा। बंगाल के राजा राम मोहन राय ने १८१५ ईस्वी में वेदांतसूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया। इसके बाद उन्होंने १८२९ में बंगदूत नामक पत्र हिन्दी में निकाला। इसके पहले ही १८२६ में कानपुर के पं. जुगल किशोर ने हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदंतमार्तंड कलकत्ता से निकाला। इसी समय गुजराती भाषी आर्यसमाज संस्थापक स्वामी दयानंद ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखा।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र (१८५५-१८८५) को हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगज़ीन और हरिश्चंद्र पत्रिका निकाली। साथ ही अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं — चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अँधेर नगरी। ये नाटक रंगमंच पर भी बहुत लोकप्रिय हुए। इस काल में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। इस काल के

लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री, और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे।

श्रीनिवासदास के उपन्यास परीक्षागुरू को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि इनको पढ़ने के लिये बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी।

इस युग की कहानियों में 'शिवप्रसाद सितारे हिन्द' की राजा भोज का सपना महत्त्वपूर्ण है।

द्विवेदी युग

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' रखा गया। सन १९०३ ईस्वी में द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार सँभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरुप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्याम सुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाल मुकुंद गुप्त और अध्यापक पूर्ण सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिंदी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरु हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की दुलाई वाली, शुक्ल जी की ग्यारह वर्ष का समय, प्रसाद जी की ग्राम और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था महत्त्वपूर्ण हैं।

समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। "हरिऔध", शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा कुछ नाटक लिखे गए।

रामचंद्र शुक्ल व प्रेमचंद युग

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्त्व है। पं. रामचंद्र शुक्ल (१८८४-१९४१) ने निबंध, हिन्दी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध लेखन किया। साहित्य समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और ह्रदय दोनों का समन्वय है। हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रुप में लिखा गया उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए है। जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेन्द्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। अब कथा साहित्य केवल मनोरंजन, कौतुहल और नीति का विषय ही नहीं रहा बल्कि सीधे जीवन की समस्याओं से जुड़ गया। उन्होंने सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन एवं गोदान आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन सौ से अधिक कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित हैं। पूस की रात, कफ़न, शतरंज के खिलाड़ी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा तथा ईदगाह आदि उनकी कहानियाँ खूब लोकप्रिय हुयीं। इस

काल के अन्य कथाकारों में विश्वंभर शर्मा 'कौशिक'', वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र', उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्धतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं।

अद्यतन काल

इस काल में गद्य का चहुँमुखी विकास हुआ। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विवेकी राय, और कुबेरनाथ राय ने ललित निबंधों की रचना की है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींन्द्रनाथ त्यागी, तथा के पी सक्सेना, के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्घाटन में सफल हुए हैं।

जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवती चरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की। नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, अमृतराय, तथा राही मासूम रज़ा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त, आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, तथा मोहन राकेश के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण रेखाचित्र व जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को समृद्ध किया।

आज गद्य की अनेक नयी विधाओं जैसे यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक, आलेख आदि में विपुल साहित्य की रचना हो रही है और गद्य की विधाएँ एक दूसरे से मिल रही हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पद्य का विकास

आधुनिक काल की कविता के विकास को निम्नलिखित धाराओं में बाँट सकते हैं

१.	**नव जागरण काल (भारतेन्दु युग)**	**१८५० ईस्वी से १९०० ईस्वी तक**
२.	**सुधार काल (द्विवेदी युग)**	**१९०० ईस्वी से १९२० ईस्वी तक**
३.	**छायावाद**	**१९२० ईस्वी से १९३६ ईस्वी तक**
४.	**प्रगतिवाद प्रयोगवाद**	**१९३६ ईस्वी से १९५३ ईस्वी तक**
५.	**नई कविता व समकालीन कविता**	**१९५३ ईस्वी से आज तक**

नव जागरण काल (भारतेन्दु युग)

इस काल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पहली बार जन-जीवन की समस्याओं से सीधे जुड़ती है। इसमें भक्ति और श्रृंगार के साथ-साथ समाज सुधार की भावना भी अभिव्यक्त हुई। पारंपरिक विषयों की कविता का माध्यम ब्रजभाषा ही रही लेकिन जहाँ ये कविताएँ नव जागरण के स्वर की अभिव्यक्ति करती हैं, वहाँ इनकी भाषा हिन्दी हो जाती है।

कवियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र का व्यक्तित्व प्रधान रहा। उन्हें नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है। प्रताप नारायण मिश्र ने हिंदी हिंदू हिंदुस्तान की वकालत की। अन्य कवियों में उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के नाम उल्लेखनीय हैं।

सुधार काल (द्विवेदी युग)

हिंदी कविता को नया रंग-रूप देने में श्रीघर पाठक का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्हें प्रथम स्वच्छंदतावादी कवि कहा जाता है। उनकी एकांत योगी और कश्मीर सुषमा खड़ी बोली की सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। रामनरेश द्विवेदी ने अपने पथिक मिलन और स्वप्न महाकाव्यों में इस धारा का विकास किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के प्रिय प्रवास को खड़ी बोली का पहला महाकाव्य माना गया है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली में अनेक काव्यों की रचना की। इन काव्यों में भारत भारती, साकेत, जयद्रथ वध, पंचवटी और जयभारत आदि उल्लेखनीय हैं। उनकी 'भारत भारती' में स्वाधीनता आंदोलन की ललकार है। राष्ट्रीय प्रेम उनकी कविताओं का प्रमुख स्वर है।

इस काल के अन्य कवियों में सियाराम शरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, नाथूराम शंकर शर्मा तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावाद

कविता की दृष्टि से यह इस काल में एक दूसरी धारा भी थी जो सीधे-सीधे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी थी। इसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, श्रीकृष्ण सरल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस युग की प्रमुख कृतियों में जय शंकर प्रसाद की कामायनी और आँसू, सुमित्रानंदन पंत का पल्लव, गुंजन और वीणा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की गीतिका और अनामिका, तथा महादेवी वर्मा की यामा, दीपशिखा और सांध्यगीत आदि कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। कामायनी को आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जाता है।

छायावादोत्तर काल में हरिवंशराय बच्चन का नाम उल्लेखनीय है। छायावादी काव्य में आत्मपरकता, प्रकृति के अनेक रूपों का सजीव चित्रण, विश्व मानवता के प्रति प्रेम आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इसी काल में मानव मन के सूक्ष्म भावों को प्रकट करने की क्षमता हिंदी भाषा में विकसित हुई।

प्रगतिवाद

सन् १९३६ के आसपास से कविता के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा। प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के यथार्थ से जोड़ा। प्रगतिवादी कवि कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।

युग की माँग के अनुरूप छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपनी बाद की रचनाओं में प्रगतिवाद का साथ दिया। नरेंद्र शर्मा और दिनकर ने भी अनेक प्रगतिवादी रचनाएँ कीं। प्रगतिवाद के प्रति समर्पित कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री और मुक्तिबोध के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस धारा में समाज के शोषित वर्ग —मज़दूर और किसानों—के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी, धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक विषमता पर चोट की गयी और हिंदी कविता एक बार फिर खेतों और खलिहानों से जुड़ी।

प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के समानांतर प्रयोगवाद की धारा भी प्रवाहित हुई। अज्ञेय को इस धारा का प्रवर्तक स्वीकार किया गया। सन् १९४३ में अज्ञेय ने तार सप्तक का प्रकाशन किया। इसके सात कवियों में प्रगतिवादी कवि अधिक थे। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमिचंद जैन, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर और भारतभूषण अग्रवाल ये सभी कवि प्रगतिवादी हैं। इन कवियों ने कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक नए-नए प्रयोग किये। अतः तारसप्तक को प्रयोगवाद का आधार ग्रंथ माना गया। अज्ञेय द्वारा संपादित प्रतीक में इन कवियों की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुयीं।

नई कविता व समकालीन कविता

सन् १९५३ ईस्वी में इलाहाबाद से "नई कविता" पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका में नई कविता को प्रयोगवाद से भिन्न रूप में प्रतिष्ठित किया गया। दूसरा सप्तक (१९५१), तीसरा सप्तक (१९५९) तथा चौथे सप्तक के कवियों को भी नए कवि कहा गया। वस्तुतः नई कविता को प्रयोगवाद का ही भिन्न रूप माना जाता है। इसमें भी दो धाराएँ परिलक्षित होती हैं।

१. वैयक्तिकता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने वाली धारा जिसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, कुँवर नारायण, श्रीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त प्रमुख हैं तथा

२. प्रगतिशील धारा जिसमें गजानन माधव मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह तथा सुदामा पांडेय धूमिल आदि उल्लेखनीय हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इन दोनों धाराओं का मेल दिखाई पड़ता है।

इन दोनो ही धाराओं में अनुभव की प्रामाणिकता, लघुमानव की प्रतिष्ठा तथा बौद्धिकता का आग्रह आदि प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। साधारण बोलचाल की शब्दावली में असाधारण अर्थ भर देना इनकी भाषा की विशेषता है।

समकालीन कविता में गीत नवगीत और ग़ज़ल की ओर रुझान बढ़ा है। आज हिंदी की निरंतर गतिशील और व्यापक होती हुई काव्यधारा संपूर्ण भारत के सभी प्रदेशों के साथ ही साथ संपूर्ण विश्व में लोकिप्रिय हो रही है। इसमें आज देश विदेश में रहने वाले अनेक नागरिकताओं के असंख्य विद्वानों और प्रवासी भारतीयों का योगदान निरंतर जारी है।

ग़ज़ल

डॉ. अम्बाशंकर नागर

इश्क़ की दास्तान है प्यारे
अपनी अपनी ज़बान है प्यारे।

तुम जियो औ' हमें भी जीने दो
जान है तो जहान है प्यारे।

दुश्मनों को भी दोस्त कर के रख
वक़्त की यह अज़ान है प्यारे।

देख बाकी न बचेगा कुछ भी
काँच का यह मकान है प्यारे।

हम तो हिन्दी हैं हिन्दी बोलेंगे
यह तो अपनी ज़ुबान है प्यारे।

हम नहीं वक़्त ख़ुद बतायेगा
कौन कितना महान है प्यारे।

जगाने का अपराध

डा. नरेन्द्र कोहली

बाहर से भीतर तक थाने में सतर्कता नज़र आ रही थी। सिपाही इधर से उधर तेजी से सरकारी जूते बजाते हुए आ-जा रहे थे - ठकाठक ! और फाटक पर ख ा सिपाही कुछ अधिक तन गया था। बहुत दिनों बाद एक केस आया था, जिससे सारे क्षेत्र में उत्तेजना फैल गई थी और उसे फाटक पर से बार-बार लोगों की भी हटाने की आवश्यकता प जाती थी।

थो ी-थो ी देर के बाद वह अपना डंडा फटकार देता था - 'भागो ! यहाँ कोई राशन-कार्ड बन रहे हैं !'

थानेदार के सामने एक कुर्सी पर एक शरीफ़ आदमी बैठा था। उसकी कमीज़ और पतलून पर जगह-जगह खून के धब्बे लगे हुए थे। उसका चेहरा परेशान और दुखी था। उसके बाल बिखरे हुए थे। वह थका हुआ लग रहा था। उसने अपनी गर्दन कुर्सी की पीठ पर टेक रखी थी।

एक आदमी जो अपने कप ों से ब ा संभ्रांत और फैशनेबल लग रहा था, उन दोनों के सामने ख ा था। वह परेशान भी नहीं था और दुखी भी नहीं था। वह उग्र और उत्तेजित लग रहा था।

थानेदार मुस्करा रहा था। साला ! आज आया है काम का केस। नहीं तो किसी अफसर के आने पर थाने की सफाई होती थी और जुलूस के साथ-साथ शोभा के रूप में पुलिस चलती थी। न किसी को डाँट सको, न किसी को मार सको, न गाली दे सको, न उत्कोच माँग सको। पुलिस की ज़िन्दगी ही नहीं रह गई थी।

उसने कर्सी पर बैठे परेशान आदमी को घूरा और फिर अपना घूरना ख े आदमी पर स्थानांतरित कर दिया।

'तुमने इन्हें छुरा मारा?' थानेदार ने पूछा।

'हाँ जी, मारा !' ख े आदमी का मुख क्रोध से लाल हो गया, 'और थाने से बाहर निकलते ही फिर मारूँगा।'

'चुप बदमाश !' थानेदार ने स्कूल मास्टरों की तरह मेज़ पर छ ी बजाई, 'बकवास मत कर !'

'थानेदार साहब !' वह आदमी तनकर बोला, 'मुझे कुछ भी कह लीजिए, बदमाश मत कहिए। मैं शरीफ़ आदमी हूँ। सरकार को हर महीने इनकम टैक्स देता हूँ। साफ धुले हुए कप े पहनता हूँ। अच्छे से सैलून में जाकर बाल कटाता हूँ। आप मुझे बदमाश कहते हैं और मैं जनाब विल्किसंस ब्लेड से दो बार शेव करके उसे फेंक देता हूँ। आप मुझे बदमाश कैसे कह सकते हैं?'

थानेदार हतप्रभ हो गया। फिर उसके चेहरे पर विरही कवियों-सी अनंत वेदना उभरी। बोला, 'विल्किसंस ब्लेड ! कहाँ मिल जाते हैं तुम्हें। मैंने हर बाज़ार की हर दुकान से पूछा है, पर मुझे कहीं नहीं मिले।'

'आपको कितने चाहिए?' वह व्यक्ति बोला, 'पाँच ब्लेडों का पैकेट साढ़े सात रुपये का ला दूँगा।'

'साढ़े सात रुपये के पाँच !' थानेदार ने अपने होंठ चाटे, 'अच्छा उन्हें छो ो। यह बताओ कि दो बार शेव करने के बाद अपने ब्लेडों का क्या करते हो?'

'फेंक देता हूँ।' वह व्यक्ति बोला।

'फेंक देते हो !' थानेदार क्रुद्ध होकर लगभग ख ा हो गया, 'फिर कहते हो तुम बदमाश नहीं हो। वेस्ट ! नेशनल वेस्ट ! तुम्हें चाहिए कि दो शेव करने के बाद वे ब्लेड तुम थाने में जमा करवाओ। तुम इतनी-सी बात भी नहीं जानते कि हम कितना फॉरेन एक्सचेंज खर्च करके विल्किसंस ब्लेड मँगवाते हैं और तुम दो शेव करके उन्हें फेंक देते हो और तुम कहते हो, तुम बदमाश नहीं हो !'

'नहीं, मैं बदमाश नहीं हूँ।' वह व्यक्ति अक कर बोला, 'गोल्ड फ्लेक सिगरेट पीने वाला आदमी बदमाश नहीं होता।'

'गोल्ड फ्लेक पीते हो?' थानेदार ने फिर होंठ चाटे, 'अच्छा, अपने सिगरेटों में से एक हफ्ते एक पैकेट थाने में जमा कर जाया करो, हम देखेंगे कि तुम असली गोल्ड फ्लेक पीते हो या नहीं।'

'बहुत अच्छा।' वह व्यक्ति बोला, 'मैं कुरसी पर बैठ जाऊँ?'

'बैठो।' थानेदार ने बेरुखी से कहा और दूसरे आदमी की ओर मु ा, 'हाँ साहब ! आप अपनी बात कहिए।'

'देखिए !' उस व्यक्ति ने ब े पीि त स्वर में कहा, 'पहले हम प ोसी थे। इनसे हमारा काफी मेल-जोल था। काफी मित्रता हो गई थी। एक बार इन्होंने मुझसे एक हज़ार रुपया माँगा। इनको अपनी बीमा पॉलिसी के पैसे देने थे और इनके पास पैसे नहीं थे। मैंने इन्हें एक हज़ार रुपये दिए. . ।'

'तुमने इनसे एक हज़ार रुपये लिए थे?' थानेदार ने फैशनेबल आदमी से पूछा।

'हाँ, लिए थे।' वह बोला, 'रुपयों का क्या है, लेना-देना किसको नहीं होता?'

'हाँ जी ! फिर?' थानेदार ने पूछा।

'फिर यह कि समय. . . . ।'

'ठहरिए !' थानेदार ने उसे टोका, 'आपने इनसे लिखवाया था कि इन्होंने आपसे रुपये लिए हैं?'

'जी हाँ।' थका हुआ व्यक्ति बोला, 'वह काग़ज़ मेरे पास है।'

'ठीक है।' थानेदार ने आगे बढ़ने की अनुमति दी, 'फिर?'

'फिर यह कि समय बीतता गया।' थका हुआ व्यक्ति बोला, 'मैंने समझा था कि ये अपनी सुविधा से मेरे रुपये लौटा देंगे, पर इन्होंने रुपये नहीं लौटाए।'

'आप लोग इस बीच भी मिलते रहे?' थानेदार ने पूछा।

'हाँ साहब ! मिलते रहे।' थका हुआ आदमी बोला, 'फिर एक समय आया जब मज़बूर होकर मुझे इनसे रुपये माँगने प े। पहले तो ये टालते रहे, फिर नाराज़गी दिखाने लगे और अंत में इन्होंने मुझे एक हज़ार रुपये का चेक दे दिया. . . . ।'

'देखिए, थानेदार साहब !' फैशनेबल आदमी बीच में झपटकर बोला, 'ये अपने मुँह से स्वीकार कर रहे हैं कि मैंने इनके एक हज़ार रुपये लौटा दिए थे। इनसे कहिए कि ये अपना स्टेटमेंट लिख कर दें।'

'क्यों साहब !' थानेदार ने थके हुए आदमी से पूछा, 'आप अपने मुँह से स्वीकार कर रहे हैं कि इन्होंने आपका एक हज़ार रुपया लौटा दिया?'

'मैं यह स्वीकार कर रहा हूँ कि इन्होंने मुझे एक हज़ार रुपये का चेक दिया था। यह मैंने स्वीकार नहीं किया है कि इन्होंने मुझे एक हज़ार रुपये दिए हैं।' थका हुआ आदमी बोला।

'रुपये और चेक में कोई अंतर है, थानेदार साहब?' फैशनेबल आदमी बोला।

'नहीं, कोई फर्क नहीं होता।' थानेदार ने उत्तर दिया, 'मुझे मेरा वेतन चाहे रुपयों के रूप में मिले या चेक के रूप में, मुझे कोई अंतर नहीं प ता।'

'वेतन में तो कोई अंतर नहीं प ता।' थका आदमी मुस्कराया, 'पर रिश्वत के रूप में यदि मैं आपको रुपये न देकर चेक दूँ तो फर्क प ेगा कि नहीं?'

थानेदार ने चिन्ता की मुद्रा बनाई। फिर बोला, 'हाँ, रिश्वत मैं चेक के रूप में नहीं लेता। चेक बाद में फँसा देता है। हाँ साहब ! मैं आपसे सहमत हूँ कि कभी-कभी रुपये और चेक में अंतर होता है। आगे बोलिए. . . . ।'

थके हुए आदमी ने अपना वक्तव्य फिर आरंभ किया, 'चेक और रुपयों का भेद और भी बढ़ जाता है जब चेक कैश न हो सके। इन्होंने जिस एकाउंट का चेक दिया था, उस एकाउंट में पैसा नहीं था, इसलिए बैंक ने वह चेक लौटा दिया। देखिए है न भेद?' वह थानेदार की ओर मु ा, 'रुपया बैंक से नहीं लौटता, जबकि चेक कभी-कभी लौट आता है।'

'हाँ साहब ! भेद होता है।' थानेदार ने चिंतित स्वर में कहा, 'मैंने इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया था। आपने मुझे बचा लिया। नहीं तो मैं सोच रहा था कि अब वेतन के समान ही रिश्वत भी मैं चेक के रूप में ले लिया करूँगा। कभी-कभी अपराधियों के पास नगद रुपया नहीं होता। अब मैं चेक कभी न लूँगा।'

'मेरी एक सलाह और मानिए !' थका हुआ आदमी बोला, 'आप अपना वेतन भी चेक के रूप में लेना बंद कर दीजिए। कोई पता नहीं कि कब सरकार के एकाउंट में रुपया समाप्त हो जाए और

उसका चेक लौट आए। कभी-कभी यह भी होता है कि रुपये के रहते हुए भी सरकार रुपया गायब कर जाती है।'

'आप ठीक कहते हैं।' थानेदार ने अपना सिर हिलाया, 'मैजिशियन पी.सी. सरकार को कई चीज़ें गायब करते हुए मैंने स्वयं देखा है। यदि सरकार रुपया गायब कर दे तो कौन ब ी बात। बैसे सरकार और पी.सी. सरकार रिश्तेदार हैं क्या?'

'नहीं', इस बार फैशनेबल आदमी बोला, 'रिश्तेदार नहीं हैं। दोनों ही जादूगर हैं। चीज़ें गायब करने और निकालने में दोनों उस्ताद हैं।'

'तुम चुप रहो।' थानेदार ने डाँटा, 'हाँ जी ! आप बताइये, आगे क्या हुआ?'

थके हुए आदमी ने सोचने की मुद्रा बनाई और बोला, 'जब वह चेक बैंक ने वापस कर दिया तो मैंने फिर इनको टेलीफोन किया। मैंने इनको बताया कि बैंक ने इनका चेक वापस कर दिया। इन्होंने कहा, कि तब इनका क्या दोष? इन्होंने तो चेक दे दिया। अब चेक की जगह रुपया देना तो बैंक का ही काम है न !'

'क्यों थानेदार साहब !' फैशनेबल आदमी फिर बीच में बोला, 'मैंने गलत कहा क्या? आप अपने थाने के खज़ांची के नाम एक चिट्ठी मुझे दें कि वह मुझे पाँच सौ रुपया दे दे....।'

थानेदार खूब जोर से हँसा। वह ठहाके पर ठहाके लगाता रहा। कभी थके हुए आदमी की ओर देखता और कभी फैशनेबल आदमी की ओर, और फिर हँसने लगता।

सहसा वह चुप होकर फैशनेबल आदमी से बोला, 'ब े चालाक बनते हो। मैंने भी ब े-ब े घाघ देखे हैं। चम ी उधे लूँगा, चम ी। क्या समझते हो अपने-आप को ! मुझे चकमा देना चाहते हो। साले, बदमाश....!'

फैशनेबल आदमी हक्का-बक्का उसे देखता रहा। फिर बोला, 'आप तो खामखाह ही नाराज़ हो रहे हैं। भला आपके होते हुए मैं अपने-आपको चालाक कैसे समझ सकता हूँ ! आपको किस बात से लगा कि मैं आपको चकमा दे रहा हूँ?'

'तुमने कहा नहीं कि मैं अपने खज़ांची के नाम एक चिट्ठी तुम्हें दे दूँ कि वह पाँस सौ रुपये तुम्हें दे दे। क्यों दे ! क्यों बे दूँ? तुम साले बहुत चालाक हो। अब मुझे लूटना चाहते हो?'

'मेरा मतलब यह नहीं था थानेदार साहब !' फैशनेबल आदमी ने सर खुजलाया, 'मैं तो केवल एक उदाहरण दे रहा था, उदाहरण ! ताकि बात साफ हो जाए। मैं कह रहा था कि यदि आप ऐसा करें....।'

'पर मैं ऐसा करूँ ही क्यों? ' थानेदार बोला, 'पर उदाहरण की बात और है। तुमने पहले क्यों नहीं कहा कि यह उदाहरण है? जब अपना बयान लिखकर दोगे तो पहले लाल स्याही से लिख देना - उदाहरण ! और बात साफ करने के लिए उसके नीचे लाल स्याही से लकीर भी खींच देना। अंडर लाइन कर देना, रेखांकित ! अब साली हिन्दी भी सीखनी प रही है। तुम हमारी मुसीबत क्या समझो ! हाँ तो तुम्हारा उदाहरण क्या था?'

'मेरा उदाहरण यह था कि' फैशनेबल आदमी बोला, 'आप अपने खज़ांची के नाम एक पत्र लिख दें कि वह पाँस सौ रुपये मुझे दे दे और वह मुझे रुपये न दे तो दोष किसका है? आपका या खज़ांची का?'

'खज़ांची का।' थानेदार गरजा, 'बाई गॉड, खज़ांची का। वह साला ऐसा करेगा तो मैं उसका सर फो दूँगा। नौकरी से निकलवा दूँगा साले को ! क्या समझता है वह अपने-आपको ! बुलाओ उसको ! कहाँ है वह?'

'यह उदाहरण था, थानेदार साहब !' थका हुआ आदमी बोला।

'ओ हो ! यह उदाहरण था।' थानेदार बोला। फिर वह फैशनेबल आदमी की ओर मु ा, 'तुम साले, ऐसे घटिया उदाहरण क्यों देते हो, जिससे किसी की हानि हो जाए। अभी मैं खज़ांची को नौकरी से निकाल देता, तो उसका जिम्मेदार कौन होता? मेरे जी में आता है कि तुम्हारी ही खाल खींच लूँ। तुम मुझे बदमाश नज़र आते हो। अब बताओ तुमने वह उदाहरण किसलिए दिया था?'

'थानेदार साहब ! आप मेरी पूरी बात सुनें,' फैशनेबल आदमी बोला, 'आपकी चिट्ठी पर यदि खज़ांची रुपये नहीं देता तो दोषी खज़ांची है, उसी प्रकार मेरे चेक पर यदि बैंक पैसे नहीं देता और चेक लौटा देता है तो दोषी कौन है? मैं या बैंक?'

'बैंक। ऑफ कोर्स बैंक।' थानेदार बोला।

'नहीं साहब,' थका हुआ आदमी बोला, 'यहाँ एक अंतर है। इनके एकाउंट में रुपये नहीं थे।'

'तो भी बैंक वालों का दोष है।' फैशनेबल आदमी बोला, 'उन्होंने जब सब लोगों के एकाउंट में रुपये रखे तो मेरे ही एकाउंट में क्यों नहीं रखे? एक आदमी सारे सिपाहियों को रिश्वत दे और आपको न दे तो आप उसे क्या कहेंगे?'

'बदमाशी। यह साफ-साफ बदमाशी है।' थानेदार बोला।

'यह बदमाशी ही नहीं है,' फैशनेबल आदमी बोला, 'यह उससे भी ब ी चीज़ है। यह पक्षपात है। भाई-भतीजावाद है। यह भ्रष्टाचार है। देश डूब रहा है. . . .।'

'एक अंतर और है।' थका हुआ आदमी बोला।

'क्या?' थानेदार ने पूछा।

'वह यह कि आप थानेदार हैं। यह थानेदार नहीं है। यह आपके साथ अपनी तुलना क्यों कर रहा है?'

थानेदार आग-बबूला हो गया, 'मेरे साथ तुलना करता है ! बराबरी करता है ! बदमाश ! बैंक का कोई दोष नहीं है, तुम्हारा दोष है !'

फिर वह थके हुए आदमी की ओर मु ा, 'बयान जारी रखो।'

'तो साहब ! काफी झग े के बाद इन्होंने मुझसे कहा कि मैं इनके घर आकर अपने रुपये ले जाऊँ।' थका हुआ आदमी बोला, 'तब मैं इनके घर पहुँचा। इन्होंने दरवाज़ा खोलकर मुझे भीतर बुला लिया और पूछा कि मैं क्या चाहता हूँ। मैंने कहा कि मैं केवल अपने रुपये चाहता हूँ और चाहता हूँ कि रुपये देने के बाद ये मुझसे कोई वास्ता न रखें।'

'फिर क्या हुआ?' थानेदार ने पूछा।

'फिर इन्होंने कहा कि ये रुपये ला रहे हैं। ये भीतरी कमरे में गए और एक ब ा-सा चाकू ले आए। जब तक मैं सँभलूँ इन्होंने मुझ पर दो बार कर दिए। इन्होंने मेरी हत्या का प्रयत्न किया। मर्डर. . . .।'

'तुम साले, हत्या करने चले थे? थानेदार ने फैशनेबल आदमी से पूछा, 'तुम एक शरीफ आदमी को मार डालना चाहते थे !'

'देखिए, आप उनका पक्ष ले रहे हैं।' फैशनेबल आदमी बोला, 'आपने मुझसे पूछा ही नहीं कि मैंने ऐसा क्यों किया।'

'क्यों किया?' थानेदार ने पूछा।

मैंने इनको देखते ही हजार रुपये के नोट इनको देने चाहे थे। पर इन्होंने कहा कि हमारा झग ा तो रुपयों का है, पर वैसे तो हम मित्र ही हैं। अब जब मैं इनके रुपये वापस कर रहा हूँ तो इनका और मेरा झग ा ही क्या। इसलिए हम घर के भीतर मैत्रीपूर्ण वातावरण में बैठकर बातचीत ही कर लें। मैं इनकी बातों में आ गया और ये मेरे घर में आ गए। फिर आप जानते हैं कि क्या हुआ?' फैशनेबल आदमी फिर नाराज़ हो गया था।

'क्या हुआ?' थानेदार ने पूछा।

'फिर इन्होंने मेरी बेटी और माँ दोनों को छे ा। मैं यह नहीं सह सका। मैं गुस्से में भीतर से चाकू ले आया और उन्माद की अवस्था में मैंने इन पर चाकू चला दिया।' फैशनेबल आदमी, थके हुए आदमी को घूर रहा था।

'तो तुमने इनकी बेटी और माँ को छे ा?' थानेदार ने थके हुए आदमी को घूरा, 'तुम जानते हो, किसी की बेटी और माँ को छे ना कितना ब ा अपराध है? इसके लिए यदि तुम्हारी हत्या भी हो गई होती तो कुछ नहीं होता। अभी तो तुम्हें दो ही चाकू लगे हैं। जाओ, घर चले जाओ?'

'इनसे पूछिए,' थका हुआ आदमी बोला, 'इनकी बेटी और माँ की आयु क्या है?'

'क्या है?' थानेदार ने पूछा।

फैशनेबल आदमी हकलाया, 'जी, मेरी माँ की आयु सत्तर वर्ष है और मेरी बेटी की तीन महीने।'

थका हुआ आदमी हँसा, 'मेरी आयु तीस वर्ष है। तीस वर्षों का एक व्यक्ति तीन महीने की बच्ची या सत्तर वर्ष की वृद्धा को छे ेगा?'

'क्यों बे !' थानेदार बोला, 'साले उल्लू बनाता है? इस आयु की बच्ची या वृद्धा को तो मैं भी नहीं छे ता। साले, यह तो फिर भी शरीफ आदमी है।'

'आपकी बात और है थानेदार साहब !' फैशनेबल आदमी बोला, 'आप तो सरकारी आदमी हैं। आप छे ें भी तो क्या ! पर यह किसी की बेटी और माँ को क्यों छे ता है?'

'क्यों छे ते हो?' थानेदार ने पूछा।

'इनसे पहले पूछिए कि मैंने इनकी बेटी और माँ को कैसे छे ा?'

'हाँ बताओ साले, कैसे छे ा?' थानेदार बोला।

फैशनेबल आदमी बोला, 'जब ये हमारे घर में आए तो मेरी माँ और मेरी बेटी सो रही थीं। ये बहुत जोर-जोर से बोले, चीखे-चिल्लाये और वे लोग जाग प े। अब बोलिए वे लोग छे े बिना जाग गए क्या? उनका दिमाग खराब था?'

'तो छे ने का मतलब है जगाना?' थका हुआ आदमी बोला।

'छे ना अपराध जरूर है।' थानेदार बोला, 'किसी को जगाना अपराध नहीं है। मेरी घरवाली मुझे रोज सवेरे जगा जाती है।'

'नहीं साहब ! जगाना पूर्णतः अपराध है !' फैशनेबल आदमी बोला, 'आपकी घरवाली की बात और है, वह थानेदार की पत्नी है। वैसे तो किसी को जगाना घोर अपराध है।'

'कैसे?' थानेदार ने पूछा।

'देखिए, भगतसिंह देशवासियों को जगाने के अपराध में फाँसी पर चढ़े। राजगुरु, सुखदेव, खुदीराम बोस, आजाद और इस देश के सारे शहीद देश को जगाने के अपराध में मृत्यु को प्राप्त हुए।'

'वह अँग्रेजों के समय की बात है।' थका हुआ आदमी बोला, 'स्वतंत्रता के बाद किसी को जगाना अपराध नहीं रह गया है।'

'हाँ साहब ! स्वतंत्रता के बाद समय बदल गया है।' थानेदार बोला, 'अँग्रेजों का समय होता तो मैं आपको कुर्सी पर न बैठा कर नीचे फर्श पर बैठाता और दस जूते आपके सिर पर मारता। समय बदल गया है साहब !'

'समय तो बदल गया है।' फैशनेबल आदमी बोला, 'आप देखिए, गोडसे को इसलिए फाँसी हुई कि उसने महात्मा गाँधी को समाधि से जगाने की कोशिश की थी। कैनेडी भाइयों को गोली इसलिए मारी गई, क्योंकि वे अपने देश को जगा रहे थे। देखिए, प्रत्येक आंदोलन में नेताओं को दंड मिलता है, क्योंकि वे किसी न किसी को जगाने का प्रयत्न करते हैं। चीन को हम अपना शत्रु मानते हैं, क्योंकि उसने हमें जगाने का प्रयत्न किया। पाकिस्तान हमारा शत्रु है, क्योंकि वह हमें सोने ही नहीं देता। अमरीका, रूस और दूसरे ब े देश इस देश के सबसे ब े मित्र हैं, क्योंकि उन्होंने सदा इस जागृति का विरोध किया। वे चाहते थे कि यह देश सोया रहे। और उदाहरण दूँ?' उसने पूछा।

'नहीं।' थानेदार बोला, 'मैं कनविंस हो गया हूँ और बोर भी। तुम साले कहीं टीचर हो जाओ। इतने उदाहरण दोगे तो सारे ल के बोर होकर सो जाएँगे।'

'किसी को सुलाना अपराध नहीं है।' फैशनेबल आदमी बोला।

'तुम ठीक कहते हो।' थानेदार ने कहा और वह थके हुए आदमी की ओर मु ा, 'इसने तुम्हें छुरा मारने की कोशिश की है, सरकार को पता लगता तो तुम्हें गोली मार देती। अब मेरी बात मानो।'

'क्या?' थके हुए आदमी ने पूछा।

'इसके घर जाओ और इसकी बेटी और माँ को सुलाओ। या फिर इसे अनुमति दो कि यह छुरा मार कर तुम्हें सुला दे। सोना सेहत के लिए अच्छा होता है। जाओ, भागो, मुझे सोने दो।'

और अपनी दोनों टाँगें मेज़ पर रख कर थानेदार सो गया।

त्रिशंकु

डा. सत्येन्द्र श्रीवास्तव

निःशब्द तटस्थताओं का
ओढ़े हुए अम्बर
झलक रही हैं चट्टानें,
कुछ काली कुछ धुँधली,
नहीं हैं उन पर आज मँ राती
दहा ते धुँधाकार जेटों की परछाईयाँ।
न ही उठ रही हैं दूरागत कन्दराओं से
गूँजती गुर्राहटें अर्द्ध-सुप्त शेरों की,
आकाश और क्षितिजों को जो ती रेखाएँ
समा चुकी हैं, इंद्रधनुषों की सिलवटों में।
बादलों की काँख-कूँख, दुहरा रही अपने को,
सूखी घाटियों की अनुगूँजों में।
और शिकारी दृष्टियाँ बिछाये
आधारहीन मध्यों से लटके हुए हैं
कुछ लोग।
ये सदा घूरते हुए त्रिशंकु लोग हैं
जो शिकारों को बेंधने के लिए
सदा रहते हैं तत्पर,
और कातते रहते हैं आधारहीन चरखों से
मन-गढ़ंत धागे,
जो बन जाते हैं धीरे-धीरे रस्सियाँ
किंतु रस्सियाँ नहीं हो सकती हैं
बाँसों की तरह ख ी
न ही क्लेयोपैट्रा की नोकीली प्रस्तर सूईयाँ।
ये मध्यों से लटके त्रिशंकु
विधाता के क्रोध से हैं
शाप ग्रसित,
फटी-फटी आँखों से केवल ताकते हुए....
फिर भी हर जगह
उनकी दृष्टि,
हमें लगता है,
हमारा पीछा कर रही हैं।

पनाह की कीमत

डा. उषादेवी कोल्हटकर

प ोस के दादाजी, मेरे ड्राइंग-रूम में आराम-कुर्सी पर बैठ कर पेपर पढ़ रहे हैं। अभी-अभी मैं उनको कॉफी और बिस्कुट देकर आई हूँ। पैसे लेकर ही सही, मैं उनकी सुविधाओं का ख़याल रखती हूँ; यह सत्य आजकल सहारा बन कर उनके कदमों को चला रहा है। मन को तसल्ली दे रहा था। उन्होंने कृतज्ञता-भरी नज़रों से मेरी ओर देखा, ममत्व से मेरा हाथ छूकर 'थैंक्यू' कहा। उनका अपनापन मेरे मन को छू गया। अपने बेटा-बेटी होने के बावजूद दादाजी अकेले-से हो गये थे; इसलिए पिछले दो सालों से कुछ ज्यादा ही थक गये थे। दादाजी की देखभाल और उनके घर का थो ा-बहुत काम करने के बहाने इन दोनों के साथ मेरा परिचय हुआ। परिचय का आत्मीय स्नेह में रूपान्तरण होते देर न लगी और गैर होकर भी मैं उन दोनों से बेटी-सा प्यार पाने लगी।

मेरे सारे-के-सारे, यानी आठों ही प ोसी सेवा-निवृत्त स्त्री-पुरुष थे और यहाँ किराये का मकान लेने की वज़ह थी मेरी आजीविका। सही मुआवज़ा लेकर, बूढ़े, बीमार व्यक्तियों की चिकित्सा सेवा करना, यह मेरे काम का प्राथमिक स्वरूप धीरे-धीरे बदल गया। चिकित्सीय सेवा के साथ-साथ, बूढ़े प ोसियों के लिए साग-सब्ज़ी, ज़रूरी चीज़ों की खरीदारी, चिट्ठियाँ लिखना, पोस्ट करना, पेपर पढ़ कर सुनाना, चर्च ले जाना, घुमाने ले जाना, डॉक्टर के पास ले जाना, बैंक ले जाना; इस प्रकार के कई काम मेरी गृहस्थी चलाने के काम आये और मेरे दो ही हाथ क्यों हैं, इस बात का मुझे अफसोस होने लगा।

मौसम के बदलते चेहरे को निहारते हुए, ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव पार करते-करते मेरी उम्र ने पचास साल पार किए। एक पल महसूस हुआ कि कम-से-कम अब ज़िन्दगी को अपनी मर्ज़ी से जीने की इज़ाज़त दे देनी चाहिए और अस्पताल की नर्स की नौकरी छो कर मैंने अपने लिए मन-पसंद काम तैयार किया। इन बूढ़े इंसानों की अलग धरती पर अपना अस्तित्व 'केयर गिवर' नाम से तथा रिश्ते से स्थिर किया। ज़िन्दगी में पहली बार मैं रास्ते के हुक्म से नहीं बल्कि रास्ता मेरे हुक्म से चलने लगा।

एक क़तार में ख े इन आठ घरों की खासियत यह थी कि हर घर में चार शयन-कक्ष, ब ा लिविंग-रूम, घर के सामने बगीचे के लिए काफी खुली जगह और दो कारें रखने के लिए ब ा-सा गैरेज। दादीजी जब तक जिन्दा थीं, उनके फूलों के शौक के कारण सबसे खूबसूरत, टिप-टॉप महकता बाग दादाजी का हुआ करता था। दादीजी कुछ ज्यादा ही सफाई-पसंद थीं, इसलिए उनके घर-आँगन और बगीचे की सफाई देख कर ही मन प्रसन्न हो जाता था। साइड-वॉक से गुज़रते हुए कभी कोई बाग में कोकाकोला के खाली डिब्बे, कागज़, कचरा या जूस की खाली बोतलें ना फेंकें, इसलिए दादीजी हमेशा बगीचे के फाटक पर ब ा-सा प्लास्टिक का बैग लटकाकर रखती थीं। आने-जाने वालों के लिए वह एक अबोल सूचना हुआ करती थी कि मेरे आँगन में कचरा मत फेंकिए। इस बैग में कचरा डालने की कृपा करें। अभी तक याद है मुझे, छोटे कद की, ब े दिल वाली दादीजी जो तन्मयता से बगीचे में तरह-तरह के पौधे लगाती थीं, करेले और कद्दू की बेलों के लिए मेरी मदद से मण्डप बनाती थीं। बेल पर एक-आध करेला आते ही, मौसम का पहला फल प्यार से मुझे लाकर देती थीं। शाम की संध्या-छाया में दादा-दादीजी बगीचे में रखी कुर्सियों पर बैठकर दादीजी के हाथों खिली सुंदरता को निहारते हुए एक-एक प्याली चाय पी लेते थे, जिसमें फूलों की ताजी खुशबू भी शामिल होती थी। उन दोनों का जीवन इस बात का साक्षी था कि आज तक दोनों ने हाथ-से-हाथ मिलाकर सह-जीवन में रंग भरते हुए ही, उम्र खुशी से गुज़ारी है। दादाजी के लिए दादीजी के अस्तित्व की अहमियत ऐसी थी कि बगीचे के पौधों का ही नहीं, घर के किसी भी व्यक्ति का पत्ता तक दादीजी की आज्ञा बिना नहीं हिलता था। दादाजी श्रोता की भूमिका बखूबी निभाते और अपनी तमाम ज़रूरतों के लिए दादीजी पर निर्भर रहते थे। दादीजी बिना इस शख़्स की ज़िन्दगी मानो अधूरी थी। उनके दिल की गहराई तक छुपे हुए प्यार की एकमेव हक़दार थीं दादीजी।

मेरे प ोसियों के बाल-बच्चों ने शादियाँ कीं, अपने घर बसाये और अपनी घर-गृहस्थी को अपने पैरों पर ख ा करने की कोशिश में व्यस्त हो गए। अपनी ज़िन्दगी अपनी इच्छा से, अपने तरीके से बिताते हुए तीज-त्यौहार, माँ-पिता के जन्मदिन, मातृ-दिन, पितृ-दिन या क्रिसमस जैसे खास अवसरों पर तोहफे लेकर माँ-पिता से मिलने आने लगे। फर्ज़ निभाने की परिभाषा चन्द रस्मोरिवाज़ याद रखने तक ही सीमित हो गई। बच्चों ने हमें बिलकुल ही भुला नहीं दिया, इस बात से बूढ़े माँ-बाप की तरसती हुई ममता खुद को तसल्ली देने लगी। मेरे ख़याल से ऐसे चन्द पल ही काफी होते हैं, उम्मीदों को साँस लेने के लिए। दादाजी का एक ल का और एक ल की यानी अमेरिकन भाषा में कहना हो तो 'मिलियन डॉलर किड्स', बहुमूल्य औलाद थे। दादाजी की बेटी, क्लॅरा की साठवीं सालगिरह हमने पिछले साल ही मनाई। क्लॅरा की बेटी, एरिका दो बच्चों की माँ थीं। दादाजी के पचपन साल के बेटे ने, उसकी भाषा में, शादी करने की बेवकूफी अब तक नहीं की थी। वह एक कामयाब चित्रकार था। उसका व्यवसाय जब तक अच्छा चल रहा था, तब तक इसी शहर में किराये के ब े-से मकान में वह ठाठ-से रहता था। उसी घर के कुछ हिस्से में उसने अपना स्टूडियो बनाया था। वक्त मिलते ही वह माँ-बाप से मिलने चला आता था। दादाजी के घर की दीवारों पर उनके बेटे जस्टिन की बनाई हुई गिनी-चुनी आकर्षक, अर्थपूर्ण तथा बहुत ही खूबसूरत तस्वीरें लगी हुई थीं। लम्बी उम्र में दादीजी का निधन, यह एक-ही-एक दुखदायी घटना दादाजी के जीवन में घटी थी। कई सालों तक ज़िन्दगी खुशी की लीक पर सुख से, सीधी, मुस्कुराती चलती गई। दादाजी पर कुछ झेलने की नौबत ही नहीं आई। दो साल पहले दादीजी चल बसीं। दोनों की शादी की साठवीं सालगिरह एक साथ मनाने का दादाजी का सपना अधूरा रह गया। अपने टूटे हुए सपने की परछाईं, जुदाई की आँखों में देखकर दादाजी ने अपने आँसू पोंछ लिये। उनके ख़याल दादीजी की यादों के करीब जाने से भी कतराने लगे। जब भी शाम के साये उनके पैरों को आकर छूते, ढलते सूरज को देखने के लिए उनके कदम बेख़याली में, बगीचे में आकर रुक जाते थे। हवा के झोंके, फूलों की खुशबू लिए उनसे लिपट जाते और दादीजी की याद से यह थो ी-सी राहत एक ही पल में बोझ-सी महसूस होने लगती थी। दादीजी के साथ बैठकर गुज़ारे हुए लम्हे याद आते, चाय की प्याली की खनक सुनाई देती और नीले आसमान को एक नज़र उठाकर देखने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते वह। दादीजी की जुदाई, बुढ़ापे के साथ-साथ टूटे-थके शरीर की शिकायतों-शिकवों ने दादाजी को ज्यादा ही भावुक बना दिया था। बच्चे थे, परन्तु पत्नी का आत्मीय व्यवहार, तत्परता, एकाग्रता, संवेदनशीलता की बात ही कुछ और थी। यकीनन दादीजी के साथ बिताया हुआ लम्बा समय सुख से, आस्था से ज़िन्दगी बिताने की गवाही देने वाला तृप्त-काल रहा होगा। यह भी सच है कि समय की गति बदलते देर नहीं लगती। समय को मनमानी करने की सूझी। उसने बेबन्द होकर जीने की ठान ली और जाने-अनजाने में उसका असर दादाजी की ज़िन्दगी पर होने लगा।

पिछले साल, दादाजी की बेटी क्लॅरा का साठवाँ जन्मदिन जब मनाया गया तब सोचा भी नहीं था कि इस उम्र में उसके पति की क्लॅरा से तलाक लेने की कुबुद्धि होगी। वह पिता के घर आकर रहने लगेगी। जस्टिन के चित्रकारी के बुरे दिन आएँगे और वह अपने घरौंदे में लौट आयेगा। बेटा-बेटी अपने घर आकर रहने लगे। वैसे भी इतना ब ा घर दादाजी को खाने को दौ ता था। क्लॅरा के घर लौटने के बाद उसकी बेटी एरिका जिसकी ससुराल इसी शहर में थी, अपने चार साल के बेटे को और दो साल की बेटी को हर शनिवार-इतवार को माँ के पास लाकर छो ने लगी। एरिका को माँ के अकेलेपन का ख़याल हो, ऐसी बात नहीं थी, बल्कि एरिका शनिवार-इतवार को सिर्फ़ पुरुषों को बैली-डान्स सिखाने लगी थी। एरिका के ड्राइंग-रूम में जब बैली-नृत्य सिर्फ़ मर्दों को सिखाया जाता था तब बच्चों की चुलबुल, शोर उसे पसंद नहीं था। बेबी-सिटर को देने के पैसों की बचत हो जाती थी और माँ को कभी-कभी एक-आध फूलों का गुलदस्ता देने से माँ खुश हो जाती थी। हफ्ते में तीन बार जस्टिन की मॅाडेल्स् घर आने लगी थीं। रसोईघर में लक ी का ब ा-सा पीढ़ा था जो दादी जी सब्जियाँ काटने के लिए इस्तेमाल में लाती थीं। इस लक ी के पीढ़े पर बैठने में मॅाडेल्स को सहूलियत होती है, इसलिए रसोईघर का इस्तेमाल स्टूडियो की तरह होने लगा। जस्टिन के सारे रंग, ब्रश, ब ा बोर्ड, व चित्रकारी की अन्य सारी ज़रूरी चीज़ों की रसोई में भी हो गई। जस्टिन के चेन-स्मोकिंग के कारण चुरुट, तम्बाकू और पाँच-दस ऐश-ट्रे, रसोई में, जहाँ जगह मिली, वहीं पर आराम

से प` रहने लगे। जिस दिन मॉडेल्स घर आती थीं उस दिन फ्रिज से कुछ लेना या एक कप चाय बनाकर पीना भी दादाजी के लिए मुश्किल होने लगा। जस्टिन की मॉडेल या मॉडेल्स किस पोज में होंगी, इसका भरोसा नहीं होता था। एक-दो बार ऐसा हुआ कि जस्टिन के चुरुट के घने धुएँ में रसोईघर डूब गया था। होंठों में चिरुट, हाथ में ब्रश, इस अदांज़ में अपने में खोया हुआ जस्टिन काग़ज़ पर रेखांकित की हुई युवती को इन्द्रधनुषी रंगों में रँगने में मस्ता था। उसी पल किसी कारणवश दादाजी ने रसोई में कदम रखा और सिर्फ़ धुआँ पहनी हुई मॉडेल को देख कर उल्टे पाँव मेरे घर तक आये और मेरी डोर-बेल बजाई। एरिका के बच्चे हर शनिवार-इतवार आकर घर में शोर मचाने लगे। घर की सुव्यवस्थित-रूप से रखी हुई कीमती चीज़ें यहाँ-वहाँ बिखेरने लगे। कुछ ही हफ्तों में घर की शक्ल पहचानना मुश्किल होने लगा। वैसे भी उम्र के हिसाब से दादाजी को, अपनी चीज़ें कहाँ रखीं, यह याद नहीं रहता था। अब एरिका के बच्चे खेलने के लिए हाथ आई हर चीज़ इस्तेमाल करने लगे, जहाँ मर्जी वहाँ रखने लगे। इसलिए दादाजी की ज़रूरी चीज़ें ढूँढकर देने का काम भी मेरे कामों की सूची में शामिल हो गया। एरिका ने जब से सिर्फ़ मर्दों को बैली-डांस सिखाने की क्लास शुरू की तब से उसके अपने पति से हर वक्त झग` होने लगे थे। बैली-डांस क्लास शादी टूटने की वज़ह बन सकता है, यह बात एरिका की समझ में नहीं आ रही थी। पति की आमदनी में घर चलाना या अपने पास जो है उसी में खुश रहना, यह ऐश्वर्यलीन एरिका को मंज़ूर नहीं था। उसकी नारी-स्वातंत्र्य की स्वच्छंद कल्पनाएँ उसके कला-गुणों को यूँ घर-गृहस्थी के कामों में दम तो ते हुए नहीं देख सकती थीं। पारस्परिक सामंजस्य की परिकल्पना पर अमल करने की उसे ज़रूरत नहीं महसूस हो रही थी। पति के कहने से बैली-डांस बंद करने का निर्णय लेना उसकी स्वतंत्रता की कल्पनाओं की पराजय थी। अपनी हार कबूल करने जैसा छोटा-सा त्याग वह कर नहीं पा रही थी। परिवार की सुख-शांति के लिए एरिका का पति, उससे छोटे-से त्याग की अपेक्षा ही तो कर रहा था। वैसे भी कौन पति चाहेगा कि उसकी पत्नी पराये मर्दों को बैली-नृत्य सिखाये। एरिका का अहंकार किसी भी समझौते के लिए राजी नहीं था।

एक शनिवार एरिका बच्चों को माँ के पास छो ने आई। हफ्ते में एक बार माँ बच्चों को सँभालती है, इसलिए बातों में शहद घोल कर माँ से ऐसी बातें करने लगी कि उसका दिखावटीपन कोई भी फौरन समझ जाय। बनावटी बातों का सिलसिला जारी रखते हुए एक दिन धूर्त एरिका की नज़र ने लिविंग-रूम की विशालता भाँप ली। उसके बाद मौका मिलते ही वह अपनी माँ को उसका हक याद दिलाने लगी, 'नानाजी के घर पर तुम्हारा उतना ही अधिकार है जितना कि जस्टिन मामा का, इसलिए नानाजी से पूछकर शानिवार-इतवार को सिर्फ़ तीन घंटों के लिए मेरे डांस क्लास के लिए उनका ड्राइंग-रूम इस्तेमाल करने की मुझे इज़ाज़त दिलवा दें।' कह कर माँ का दिमाग खाने लगी। एरिका और उसके पति के रोज-रोज के झग`-टण्टों का उपाय समझकर या फिर विरोध करने के लिए भी दादाजी के पास ताकत नहीं बची थी, इसलिए उन्होंने एरिका को इज़ाज़त दे दी। उस इज़ाज़त का हाथ पक कर एरिका के पुरुष विद्यार्थी शनिवार-इतवार के दिन कुछ समय के लिए क्यों न हो, बैली-डांस सीखने के लिए दादाजी के घर आने लगे और दादाजी के एकान्त में दखल देने लगे। हर हफ्ते जस्टिन मामा को कीमती चुरुट के ब`-से बॉक्स की रिश्वत देकर, लिविंग-रूम का फर्नीचर, सोफा, कुर्सियाँ थो ी देर के लिए दूसरे कमरे में रखवाने के झमेले में दादाजी के कीमती फर्नीचर की दुर्गत होने लगी। कुर्सियों के पैर डगमगाने लगे, सोफे के जो ढीले होने लगे। क्लास शुरू होते ही एरिका कमरे के दरवाजे-खि कियाँ बंद कर लेती थी, इसलिए म्यूज़िक का शोर सुनाई नहीं देता था। फिर भी कई बार एरिका के बच्चे जिद करते थे, माँ का नृत्य कौशल देखने उस कमरे में जा पहुँचते थे। दादाजी को यह बात बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी। तंग और छोटे कप` पहनकर उत्तेजक अंगविक्षेप करती हुई एरिका और उसके विद्यार्थियों का नंगा नाच देखने से छोटे बच्चों पर क्या असर होगा, इस बात से दादाजी चिन्तित हो जाते थे। नियम, नीति, अच्छे संस्कारों का महत्व मानने वाला उनका मन बेहद उदास हो जाता था। इस घर ने उनके सपने, रहने-जीने के सभ्य तौर-तरीके, उनके सहजीवन के सुनहरे क्षण, उनके बच्चों का बचपन, क्या कुछ नहीं सँभाला था। ब ी मेहनत और परिश्रम से बाँधा था यह सलोना-सा घर परन्तु उनके जीते-जी घर की ईंटें घुँघरुओं की झंकार से खिसकने लगी थीं।

दादाजी अकेले थे तब शनिवार-इतबार को अपने दोस्तों को घर पर बुलाते थे या कभी उनसे मिलने जाते थे। बैली-डांस क्लास के कारण उनके दोस्तों का आना-जाना भी तकरीबन बंद-सा हो गया। दादाजी के सूट उनके स्पर्श के इंतज़ार में हैंगर पर प`-प` धूल झेलने लगे थे। जब भी दोस्त मिलने आते थे, दादाजी ब` खुश होते थे। जी-भर के स्नान करके अपनी पसंद का बढ़िया सूट पहनकर, पॉलिश किये हुए चमकते जूते पहनकर, सजे-सजाये, साफ-सुथरे, टिप-टॉप, लिविंग-रूम में दोस्तों की शानदार आवभगत करते थे। दिल खोलकर, देर तक दोस्तों से बातें करते हुए तन्मय होकर चेकर्स खेलते और कभी-कभार उनके हिस्से में आने वाली सोशल एक्टीविटी का पूरा-पूरा आनंद उठाते थे। दोस्तों का आना बंद हुआ और दादाजी और ही ज्यादा गुमसुम रहने लगे। एरिका के डांस क्लास के सारे विद्यार्थी खूबसूरत थे, हट्टे-कट्टे जवान थे परन्तु 'गे' श्रेणी के थे, इसलिए प ोसी आक्षेप देने लगे। दादाजी के पास आकर ऐतराज़ का समर्थन करने लगे। एरिका के पति को जब उसके कारनामे का पता चला तो एक दिन आग-बबूला हो कर इस कदर तेज कार चलाता हुआ आया कि उसकी कार बगीचे की बा तो कर सीधे बगीचे के बीच में आकर बंद हो गई। चुन-चुनकर गालियाँ बकते हुए उसने एरिका की खूब ख़बर ली और 'मेरे घर में कदम रखा तो जान से मार डालूँगा' ऐसी धमकी देता हुआ वह चलता बना। सहमी हुई एरिका माँ के गले से लिपट रोने लगी और दादाजी के घर के चौथे शयन-कक्ष में उसने अपना और बच्चों का बिछौना बिछा दिया। आधुनिक महिला, पति की मोहताज़ नहीं होती, यह बात अपने-आप को समझाने लगी। पति का डटकर मुकाबला करने की योजनाएँ बनाने लगी।

बगीचे के बिलकुल बीचोंबीच आकर बंद प ी कार को वहाँ से हिलाना ज़रूरी है, इस बात का जस्टिन को अहसास तक नहीं हुआ। एरिका के बच्चों ने बंद कार को अपना खेल-घर बनाया। बच्चों की कल्पनाशक्ति की दाद देते हुए अपने-आप में खोया हुआ जस्टिन आते-जाते रंग-बिरंगे पानी से भरे हुए बर्तन बगीचे में खाली करने लगा। जस्टिन के रंगों के बर्तन, ब्रश, बगीचे के नल पर धोने का नया खेल एरिका के बच्चों ने ढूँढ निकाला। बगीचे की साफ-सफाई, घास निकालना, पौधों को पानी देना, नये पौधे लगाना, इन कामों में दादाजी के हर दिन का, थो ा-सा वक्त क्यों न हो, आराम से कट जाता था। फूलों की महक दादीजी की यादों को ताजा करतीं और अकेलेपन की तल्ख़ियाँ कुछ कम हो जाती थीं। एरिका के पति की कार, बेकार होकर जब से बगीचे में आकर रुक गई थी तब से दादाजी का इकलौता शौक भी मन मसोसकर रह गया। कुछ ही दिनों में सुंदर बगीचे की पूरी तरह दुर्दशा हो गई। फूल-पौधे सूख गये, घास बढ़ गई। एरिका के बच्चों के फेंके हुए काग़ज़, पेपर प्लेट्स, टूटे हुए खिलौनों की भी से बगीचे की और ही ज्यादा दुर्गत हो गई। उज ी हुई बदरंग बाग की दयनीयावस्था से भी ज्यादा दादाजी की ग्रहदशा प्रतिकूलता की ओर झुक रही थी, क्योंकि एक दिन दादाजी की बेटी को शॉप-लिफ्टिंग करते हुए पुलिस ने पक लिया। क्लेरा को तीन महीने की कैद हो गई। दादाजी जैसे सज्जन की बेटी दुकान से चीज़ों की चोरी करते हुए पक ी गई, यह बात प ोसियों की चर्चा का विषय बन गई। दादाजी को देखते ही लोग कानाफूसी करने लगे, जिसकी दादाजी को आदत नहीं थी। दादाजी के कंधे ज्यादा झुक गये हैं या मान, यह सवाल मैं अपने-आप से पूछने लगी। अकेलापन और खामोशी की शिकायत करने वाले दादाजी अकेलेपन और खामोश लम्हों के लिए तरसने लगे।

एरिका जब काम में उलझी होती थी, तब बच्चों को सँभालने के लिए बेबी-सिटर घर आने लगी। बच्चे क्लेरा के ला -प्यार के आदी हो गये थे इसलिए बेबी-सिटर के रूखे व्यवहार का प्रतिकार करने के लिए कुछ ज्यादा ही रोने लगे। बच्चों का रोना-धोना, चीखना-चिल्लाना, पिनपिनाना, जस्टिन का मॉडेल्स् पर रंग बिखेरना, एरिका की बैली-डांसिंग की क्लास, घुँघरुओं की झंकार, संगीत-सुरों की बौछार, बगीचे में बंद कार के रूप में जम के बैठा हुआ शिशिर दादाजी की सहनशक्ति का क ा इम्तहान ले रहे थे। सब कुछ बर्दाश्त के बाहर होने लगा था। दादाजी के घर और बगीचे की बदसूरती इस माहौल की खूबसूरती को नज़र लगा रही है, आस-पास के सुंदर परिवेश को बिगा रही है, घर बेचने के लिए विज्ञापन निकालते ही - घर की कीमत पर सिर्फ़ दादाजी के घर की बदतर हालत के कारण असर हो रहा है, इस प्रकार की शिकायतें लेकर प ोसी, पुलिस-स्टेशन का दरवाज़ा खटखटाने लगे। दादाजी सचमुच हताश हो गये थे, त्रस्त हो गये थे, परेशान हो गये थे।

घर के बच्चों ने जल्द से जल्द घर और बगीचे की साफ-सफाई करने में पहल न की तो पैसे गिन कर हर हफ्ते इतने ब ् घर-आँगन की सफाई करने के लिए पेन्शन के इने-गिने पैसे कब तक पूरे प ेगे? बगीचे में ख ी बंद कार को, पैसे देकर 'जंक यार्ड' में पहुँचाया और एरिका के पति ने उसकी और बच्चों की ज़िन्दगी से हमेशा के लिए मुँह मो लिया, तब क्या होगा? यह हिसाब दादाजी ने मेरे घर आकर किया। काफी सोचने के बाद एक अस्थायी पर्याय मानकर दिन के कुछ घण्टे, मेरे घर आकर, मेरे ड्राइंग-रूम में बैठकर अकेले, शांतिपूर्वक बिताने का निर्णय ले लिया। अब दादाजी की हर साँस दादीजी से मिलने की दुआ करने लगी है।

अप्रासंगिकता का दंश

सदोष हिसारी

मौत
या मौत की आहट
इतनी भयावह
इतनी क्रूर और दुखद
कभी नहीं होती;
जितना भयावह होता है
ढलती जाती उमर में
खुद के अप्रासंगिक और
निरंतर उपेक्षित होते जाने का अहसास
अप्रासंगिकता से
सिर्फ़ टूटता ही नहीं
भीतर-भीतर बहुत छीजता
और बहुत निचु ता भी है आदमी।
घोर कष्टकारी यंत्रणा
और दुःख का
बोधक और भेदक होता है
अप्रासंगिकता का अहसास
मौत तो बस सुला भर देती है।
घर-परिवार-समाज के
तमामतर प्रसंगों से बाहर होते जाने की
धीरे-धीरे होती आहट सुनते ही
काँप-काँप उठता है पूरा वजूद
इस्पाती व्यक्तित्व कभी का
बच्चे ज्यूँ डरने लगता है।
केन्द्र रहा था अब तक जिनका
साथ छो ने लगते हैं
वे सारे तारे, चाँद, पृथ्वी
और तमाम वो ग्रह कि
जो बस इर्द-गिर्द उसके ही हरदम
परिक्रमा करते रहते थे
साथ छो ने लगते हैं सब।
धुरी रहा था जीवन की जो
आज परिधि भी नहीं रहा है
खुद से भी नज़र मिलाने में
कुछ शर्म-शर्म-सी लगती है।
अभिशाप है आदमी का
रहते जीवन अप्रासंगिक होना
उन दूसरों का दिया हुआ
जो खुद भी अभिशप्त हैं
इसी के लिए
आने वाले कल में।

रहस्य राम के वनवास का !

डा. जवाहर चौधरी

महल के बाहर रिटायर हो चुके लक्ष्मण सोच रहे थे कि दिन में तारे क्यों दिखाई नहीं देते हैं! कल और परसों भी वे यही सोच रहे थे। आदमी अकेला हो और सोचते रहने को विवश हो तो सोचने के अलावा कर भी क्या सकता है। यहाँ राजधानी में, सीमेंट के घने जंगल में बहुत से संत-महंत, ज्ञानी-ध्यानी, चिंतक-विद्वान वगैरह हैं जिनसे फोन पर चर्चा कर ली जाये तो इस तरह के किसी भी प्रश्न का उत्तर मिल सकता है। लेकिन वे ऐसा करेंगे नहीं। अगर इसका उत्तर मिल गया तो आगे के दिनों में टाइम-पास की भयानक समस्या ख ी हो जायेगी। प्रश्न प्रायः पत्थर की तरह होते हैं जिन पर बैठ कर ब े-ब े विद्वान आसानी से जीवन गुज़ार देते हैं। विद्वानों ने भाषा और साहित्य के प्रश्न-पत्थरों से आलीशान कोठियाँ बनवाईं और खूब बनवाईं। यह बात अलग है कि अब भी ये कोठियाँ एक प्रश्न हैं। किसी विधा की धूप खिले या किसी शैली की हवा चले, अपनी कोठी का वास्तु ठीक करा कर सुख-समृद्धि को वे अपने पक्ष में किये रहते हैं। लेकिन ऐसा करते हुए वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि नींव में लगे प्रश्न-पत्थर वहीं बने रहें। प्रश्न कोठी के रॉ-मटीरियल हैं। प्रश्न कोठी के अस्तित्व हैं। इनकी धुलाई-पोंछाई हो सकती है, रंग-रोशन हो सकता है लेकिन उत्तर नहीं ढूँढे जा सकते। उत्तर प्रश्न के लिए 'पॉयज़न' हैं। इस समय भी प्रश्न लक्ष्मण के लिए समय काटने के प्रिय औज़ार हैं।

'एक्सक्यूज़ मी सर।' लक्ष्मण ने पलट कर देखा, एक सुन्दरी सामने है। अचानक एक कौंध-सी हुई और दिन में तारे न दिखने का प्रश्न गायब हो गया। प्रश्न के विकल्प में दूसरा सुंदर प्रश्न सामने था। चौंकते हुए लक्ष्मण अतीत में खो गये - 'सुंदरी ! क्या तुम सूर्पणखा हो?'

'नहीं सर, मैं एक विदेशी कंपनी की देशी प्रतिनिधि हूँ। वैसे मुझे विश्वास है कि अब तक आपकी नाक-कान काटने की आदत ख़त्म हो चुकी होगी?' कहते हुए सुंदरी ने अपने होंठ फैला दिए।

'उस दिन तो अकेलेपन के कारण मुझे खीझ हो गई थी सूर्पणखे।....अब तो प्रजातंत्र है, मानवाधिकार है, महिला आयोग है, मीडिया वाले हैं, तैंतीस प्रतिशत आरक्षण की भी चर्चा है। आओ, डरो नहीं, पास बैठ जाओ प्रिय सूर्पणखे।'

'सर, मैं सूर्पणखा नहीं, विदेशी कंपनी की....।'

'सूर्पणखा भी तो विदेशी थी, तुम निश्चिन्त रहो अब हमारा वो आचरण नहीं होगा।' लक्ष्मण ने आश्वस्त किया। 'हाँ, आजकल विदेशी कंपनियों की बाढ़-सी आई हुई है !'

'रामराज्य है...रामभरोसे सरकार है...आप कहें तो राम-वंदना गाऊँ?...क्या आप पसंद करेंगे?'

सुंदरी ने एम. टी. के वीज़े की तरह भयानक अदा के साथ गाने के लिये मुँह खोला और अपनी दाढ़ें दिखाईं।

'नहीं नहीं, रहने दो।....सूर्पणखे, ये बताओ कि क्या तुम मुझे विवाह का प्रस्ताव देना चाहती हो?' लगा जैसे लक्ष्मण अपनी पुरानी भूल सुधारने का मन बना रहे हों।

'मेरे सर्विस कांट्रेक्ट में ऐसा कुछ नहीं है, सर !'

'यदि किसी तरह कांट्रेक्ट हो जाये तो क्या तुम विवाह कर सकती हो?'

'हाँ, अगर आदमी काफी 'रिच' हो तो सोचा जा सकता है।....लेकिन आप ! आप विवाह क्यों करना चाहते हैं?'

'समय नहीं कट रहा सूर्पणखे। तुम्हें नहीं मालूम सिर्फ़ यादों और प्रश्नों के सहारे समय काटना कितना कठिन है।....किस्मत ! इन दिनों तो मैं 'रिच' भी नहीं हूँ।' लक्ष्मण विगलित हो गए।

'ऐसा है तो आप कुछ करते क्यों नहीं?.... मेरे पास ऐसे बहुत से प्रस्ताव हैं जिससे आपका समय कटेगा और काफ़ी सारा कमा भी लेंगे बैठे-बैठे।' सुंदरी ने विवाह के प्रस्ताव को 'डस्टबिन' में डालते हुए कहा।

लक्ष्मण समझे नहीं कि यहाँ, सीमेंट के जंगल में बैठे-बैठे वे कौन-सा काम कर सकते हैं ! गणित में शुरू से कमज़ोर थे, हिस्ट्री याद होती नहीं, अँग्रेजी में 'ए' से ही प्राब्लम शुरू हो जाती है।

ज़माना ऐसा आ गया है कि आदमी अँगूठा छाप हो या फिर खूब पढ़ा-लिखा, बीच वाले हमेशा दुखी रहते हैं। नीचे रह नहीं पाते, ऊपर पहुँचते नहीं। युद्ध में क्रोधित होने और तीर आदि चलाने के अलावा कुछ आता नहीं था। सकुचाते हुए उन्होंने पूछा, 'मैं क्या काम कर सकता हूँ?'

'आप राजमहल के अंदर की बातें हमें बता सकते हैं....देखिये मंथरा जबरन में मारी गई। उस दलित का कोई दोष नहीं था। आप राम के वनवास का असली रहस्य उजागर कर सकते हैं.... राजा दशरथ की मौत पर से पर्दा भी उठा सकते हैं, ऐसे बहुत से काम हैं जो आप कर सकते हैं।'

सुंदरी की स्किन टाइट जीन्स और लो नेक टॉप के बावजूद लक्ष्मण प्रश्न सुन कर चौंके, 'ये कैसा काम है? इसे काम कहते हैं? रामजी के वनवास का कारण जग-ज़ाहिर है और पिताश्री राजा दशरथ के देवलोक-गमन का कोई रहस्य नहीं है। बच्चा-बच्चा व गाँव-गाँव इस बात को जानता है। तुम्हारा मतलब क्या है सूर्पणखे? तनिक समझा कर कहो?'

'चौंकिये मत मिस्टर लछमना। सत्ता के आस-पास जो भी घटित होता है उसमें रहस्य अनिवार्य रूप से होता है....'

'चलो माना, लेकिन उन रहस्यों का तुम क्या करोगी?'

'हमारा काम है रहस्यों को उजागर करना।'

'लेकिन रहस्य हो तो उजागर करोगी ना?'

'नहीं हो तो रहस्य बनाना भी हमारा काम है।' सुंदरी ने अपने लो-नेक को सफाई से थो ा और 'लो' कर दिया।

लक्ष्मण को शंका हुई, 'कहीं तुम मीडिया वाली तो नहीं हो सूर्पणखे?'

'सिर्फ़ मीडिया वाली नहीं, टी.वी.मीडिया वाली कहो....वैसे हमारे और भी बहुत से काम हैं।'

'तुम विवाह कर आराम से टाइम-पास क्यों नहीं करतीं। इतना सारा काम....! अकेले....।'

'अकेले नहीं, हमारे बॉस हैं, वे भी काम करते हैं।'

'तुम्हारे बॉस ! रावण?' लक्ष्मण की आँखें विस्मय से गोल हो गईं।

'रावण नहीं हैं। हाँ, रावण की तरह विद्वान ज़रूर हैं।..आपने ईश्वर बावला का नाम सुना होगा?'

'ईश्वर बावला ! वो चैनल वाला बावला?....रावण के कारण तो सिर्फ़ लंका जली थी लेकिन इस बावले के कारण तो पूरा देश जल सकता है !....तुम मुझे क्षमा करो सूर्पणखे। अगर विवाह करने का इरादा नहीं हो तो चली जाओ, चली जाओ।' नाक-कान काटने वाले लक्ष्मण ने हाथ जो दिये।

दूसरे दिन टी.वी.चैनल चीख रहा था, 'लक्ष्मण ने राजमहल के रहस्यों को बताने से किया साफ इंकार।....राम के वनवास से राज-परिवार की कलह हुई उजागर। दशरथ की मौत का रहस्य और गहराया। साज़िश में लक्ष्मण के शामिल होने की आशंका हुई प्रबल। राम और लक्ष्मण के समर्थकों में भारी तनाव....घमासान युद्ध की तैयारियाँ शुरू....शेयर-मार्केट मे चिंता....संघ परिषद्-दल हुए नाराज़....देखते रहिये मौत तक।

हवा

डॉ. धनंजय सिंह

मेरी आँखों सी
निर्जल और शुष्क
समुद्र मुझ-सा ही
प्रशांत और गंभीर
कोई ज्वार-भाटा नहीं
वसुंधरा
मेरे निश्चय सी
स्थिर और अडोल

और आग
दहकती हुई मेरे विचारों-सी
मेरे बंद द्वार को
खटखटाना मत
मैं तुम्हारी प्रतीक्षा से ऊबकर
सोना चाहता हूँ
ताकि
रचना कर सकूँ
एक नयी स्वप्न दृष्टि की।

त पती आत्मा

ममता खरे

मेरे पति को डॉक्टर होने के नाते कॉलेज के अहाते में ही घर मिला था। हमारे घर के बरामदे से मॉरचरी का गेट दिखाई प ता है। जब भी मैं बरामदे से निकलती हूँ मुझे एक या दो एम्बुलेंस, टेम्पो, ट्रालियाँ और ढेर सारे लोग दीख जाते हैं। मन ब ा उदास हो जाता है। दिमाग सोचने लगता है कि न जाने आज किसका पति, किन बच्चों का पिता या फिर जाने किसका बच्चा लाया गया है।

इनसे कहती तो ये कहते कि तुम उधर देखा ही न करो। भला ऐसा कहीं संभव है? ध्यान तो दिन भर में कई-कई बार उधर चला जाता है। एक तो बच्चों के स्कूल जाते ही घर खाली हो जाता है। ये भी ब्रेकफास्ट करके अस्पताल चले जाते हैं। नहा-धोकर पूजा-पाठ और नाश्ते से फुरसत घंटे-डेढ-घंटे में मुझे भी मिल जाती है। कोई मैगजीन या कोई काम लेकर मैं बरामदे में पंखा चला कर बैठ जाती हूँ। माली आ जाता है तो उससे पे -पौधों के बारे में कहती हूँ। पर बाकी समय मेरा ध्यान उधर ही जाता रहता है।

कल सुबह मैं बाग में फूल तो ने निकली तो देखा कि अस्पताल की ट्राली को धकेलते हुए दो वार्ड बॉय् और उसके साथ दो महिला तीन पुरुष मॉरचरी के गेट से भीतर चले गये। ट्राली पर सफेद कप े से ढकी डेड बॉडी थी। इतने सवेरे, स्मार्टली ड्रेस्ड ये लोग, और ये बॉडी. . . .मैं आश्चर्य से देखने लगी। महिलाएँ तो तुरंत गेट से निकल कर स क पर ख ी हो गईं। उन्होंने रूमाल से अपनी नाक ढक रखी थी। सूर्य की कोमल किरणें उस समय पे ों के शिखरों को छूती धरती तक पहुँचने का प्रयास कर रही थीं। सुबह का यह समय मुझे बहुत अच्छा लगता है।

मैं सोचने लगी कि कैसे हुई होगी मृत्यु, तभी देखा कि तीनों पुरुष और दोनों वार्ड बॉय् ट्राली धकेलते बाहर आ गये। वार्ड बॉय् तो आगे बढ़ गये पर ये पाँचों ख े होकर वहीं बातें करने लगे। मैंने भी अपना ध्यान उन पर से हटाते हुए कुछ अनमनेपन से ही मॉरचरी की ओर देखा। पल भर के लिए विश्वास-सा नहीं हुआ। आँखें शायद गलत देख रही थीं। मॉरचरी के बरामदे पर सफेद सा ी पहने, अधपके बालों वाली एक महिला ख ी थीं। मुझे उनका चेहरा स्पष्ट दिखाई दे रहा था. . . .चेहरे पर व्याकुलता, घबराहट, दुख का भाव था। वह व्याकुल भाव से उस ग्रुप को देख रही थीं। शायद उनकी बातें भी सुन रही थीं। मुझे लगा वह रो रही हैं। मैं फूल तो ने लगी. . . .मॉरचरी में औरत? कौन है? इनकी कोई परिचिता लग रही हैं. . . .पर उन्हें छो कर ये लोग. . . .अरे, वह ग्रुप तो धीरे-धीरे चलने लग गया। मैंने महिला को देखा, घब ाकर वह एक-एक सीढ़ी उतरने लगीं. . . .फिर उन लोगों को पुकारती हुई वह गेट की तरफ लगभग दौ प ीं।

मैंने स्पष्ट सुना, कह रही थीं. . . .'मुझे अपने साथ ले चलो. . . .मुझे इस नरक में छो कर मत जाओ. . . .सुनो. . . .अरे सुनो तुम लोग. . . .।' मैंने आश्चर्य से देखा कि वे पाँचों आपस में बात करते चले जा रहे थे। उन्होंने पीछे मु कर भी नहीं देखा। जैसे उन्होंने कुछ सुना ही न हो. . . .वे पीछे मु कर भी नहीं देख रहे थे। महिला को शायद आरथ्राइटिस थी, वह तेज चल नहीं पा रही थी। मैं अपने गेट के पास आकर ख ी हो गई। वे पाँचों थो ी दूर पर ख ी काले रंग की कार में बैठकर चले गये। उन्हें कार में बैठते देख महिला और ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगीं. . . .'मुझे यहाँ क्यों ले आये थे? क्यों छो कर जा रहे हो इस नरक में. . . ." माथा पीट लिया उन्होंने. . . .भगवान ये दिन भी देखना बदा था. . . .।'

मुझसे आगे न देखा गया, मैं भीतर चली आयी। पता नहीं. . . .ये लोग कैसे इंसान हैं. . . . एक वृद्धा को मॉरचरी में छो कर क्यों चले गये।

मैंने भीतर आकर किसी से कुछ नहीं कहा, क्योंकि मेडीकल कॉलेज में तो आये दिन कुछ-न-कुछ घटा करता है। पर काम करते वक्त भी वह रोती-बिलखती वृद्धा मुझे याद आती रही। सारे दिन में उस दिन बाहर कम ही निकलना हुआ। फिर भी जब-जब बरामदे पर आकर ख ी हुई नज़रें

मॉरचरी की ओर उठ ही गईं। और यह देख कर आश्चर्य हुआ . . . बरगद का जो विशाल पे जटा बिखेरे ख ा था और जिसकी सारी ज ें पानी की धार से मिट्टी कटने के कारण खुल गई थीं, उसी एक मोटी ज पर वह वृद्धा उदास मुँह लटकाये बैठी थीं।

रात को खाते समय मैंने पति को सारा किस्सा सुनाया तो वे टालते हुए बोले . . . 'होगी कोई बात, नौकरानी होगी और उसका कोई नहीं होगा . . . चली आई होगी। बच्चे शायद रखना नहीं चाहते हैं इसलिए छो गये हैं। तुम क्यों इन बातों में प ती हो? उधर देखो ही नहीं।'

मैंने चुप रहना ही ठीक समझा। एक तो मर्द उस पर डॉक्टर . . . इन लोगों के पास यूँ ही दिल नाम की चीज़ कम ही होती है। ज्यादा इंटेरेस्ट लूँगी तो डाँट देंगे। बच्चों तक का लिहाज़ नहीं करेंगे।

सुबह होते ही हर रोज से कुछ जल्दी ही बाहर निकल आई। उस समय पौ फटी ही थी। गेट के पास पहुँचकर मैंने मॉरचरी की ओर देखा तो दंग रह गई। वह वृद्धा सिर झुकाये पे की एक मोटी ज पर बैठी थी। मुझसे न रहा गया। गेट का ताला खोलकर मैं उनकी तरफ बढ़ी। मेरा कौतुहल सीमा पार कर चुका था। वद्धा के पास पहुँचकर मैं ठिठककर रुक गई। न जाने क्यों एक अजीब स ी-सी महक आ रही थी, जैसे आसपास कोई स ा मुर्दा रखा हो। स्वतः ही आँचल से नाक दबा लिया मैंने। तभी वृद्धा ने आँखें उठाकर मुझे देखा। चेहरे पर उदासी, दुख और निराशा की छाया मँडरा रही थी। पर आँखें? आँखें मानों निष्प्राण हों . . . उनमें चमक नहीं थी . . . काँच की पुरानी गोली जैसी लग रही थीं। पर मैंने किसी बात पर ध्यान नहीं दिया। मुझे तो उस महिला पर तरस आ रहा था जो सारे दिन सारी रात यहाँ बैठी है। शायद कुछ खाया-पिया भी न होगा।

मुझे देख कर महिला बोली, 'तुम उस मकान में रहती हो न? कल कई बार देखा था।'

. . . . 'जी, पर आप कल से अकेली यहाँ क्यों बैठी हैं?'

. . . . 'तो कहाँ जाकर बैठूँ बता दो?' उनकी आवाज़ भर्रा उठी . . . 'जिसके बच्चे न पूछें, उसे भला कोई गैर क्यों रहने देगा?'

. . . . 'ऐसा न कहिये मा . . ता जी, मुझे कल सुबह से ही आपकी चिन्ता हो रही थी पर बिना जाने-बूझे आपको या आपके बच्चों को मानसिक कष्ट कैसे पहुँचाती? इसीलिए दूर ही थी।'

मेरी बात का उत्तर न देकर वह चुपचाप स क की ओर देखने लगीं। मेरी जिज्ञासा मिटी नहीं थी इसलिए उनसे जरा हट कर एक दूसरी ज पर बैठ गई। दस-बारह मिनट खामोशी में कट गए फिर उन्होंने कहना शुरू किया, 'कल मुझे छो ने जो पाँच लोग आये थे उनमें से दो मेरी ल कियाँ थीं। दो दामाद और एक बेटा था।'

मैंने उनके कहे शब्द 'मुझे छो ने जो पाँच लोग आये थे' पर जरा भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि कल से तो लगातार इन्हें देख ही रही थी। . . . मैं तो कुछ और ही समझ रही थी, मैंने नहीं बताया कि क्या सोच रही थी।

वह कहती रहीं . . . 'आज कल के बच्चे कितने स्मार्ट हो गए हैं देखो। कोई मर जाता है तो उसे घर तक नहीं ले जाते हैं। अगर ले जाएँगे तो चूल्हा नहीं जलेगा, पचीस बार चाय न पी सकेंगे, बैठकर नकली आँसू बहाने प ेंगे, सफेद धोती निकालनी प ेगी और तो और सारे काम रद्द करने प ेंगे . . .।'

बात तो सच कह रही थीं। मैं क्या कहती?

'इन्हीं बच्चों को पैदा करने का अकथनीय कष्ट पर अथाह सुख माँ क्या भूल सकती है? नवजात शिशु को गोद में उठाकर माँ का रोम-रोम खुशी से झूम उठता है। कष्ट भूलकर वह बच्चे को चूमने लगती है . . . और ये बच्चे? माँ की दुर्गति करने से थकते नहीं हैं।'

इस बार भी मैं चुप ही रही लेकिन महिला जो कुछ कह रही थीं सच कह रही थीं।

'लोग अपने संस्कारों को छो कर पाश्चात्य देश के फूह रंग-ढंग सीख रहे हैं। मृतकों का सम्मान करना, घर वालों का इकट्ठा होना, सबका एक साथ मिलकर दाह-संस्कार के लिए जाना . . . आपसी मेल-मोहब्बत का प्रतीक होता है। रिश्ते मज़बूत होते हैं . . . 'कहते-कहते वे जाने कहाँ खो गईं।

मैं भी उनकी दृष्टि का पीछा करती मौन बैठी रही।

' . . . . वे लोग अपनी मरी माँ को ठंडे-घर में रख कर चले गए। क्या उन्हें ऐसा करना चाहिए था? क्या कोई माँ ऐसे व्यवहार की उम्मीद करती है?'

'क्या हुआ था उन्हें? कोई बुरी या छूत की बीमारी?

'नहीं ऐसा कुछ नहीं हुआ था। हार्ट की बाईपास सर्जरी हो रही थी, एकाएक मौत सिरहाने आकर ख ी हो गई। मैंने देखा मरने की खबर सुनकर ल कियों की आँखें भर आईं। छोटा दामाद भी दुखी हुआ। मैंने तो सोचा, माँ के मरने का दुख हो रहा है, पर असल में दुखी होने का कारण ही कुछ और था।'

'क्या था असल कारण?'

'मुफ्त की नौकरानी जो नहीं रही। सुबह से उठकर बेड-टी देना, बच्चों को जगाकर दूध पिलाते हुए लंच-बॉक्स तैयार करना। बच्चे इतने छोटे नहीं कि उठ न सकें फिर भी...। चार मंजिले से उतर कर बच्चों को गेट तक बस के लिए छो ने जाओ। फिर बेटी दामाद को खिला-पिलाकर लंच-बॉक्स देते हुए भेजो। घर का काम करवाओ काम वाली से और खुद घूम-घूमकर सबके कप बटोरकर वाशिंग-मशीन में धोवो, उन्हें सुखाओ, सूखने पर उठाकर सबके कमरे में रखो, तीन बजे नहीं कि बच्चे आ गए। उन्हें फ्रेश होने के बाद नाश्ता करवाओ....हज़ारों ऐसे काम अब कौन करेगा, ये बात सोचकर रो रहे थे सब। माँ के भरोसे सयाने होने लगे ल कों को छो कर दुनिया भर का चक्कर लगाने निकल जाते थे, अब प गई पाँव में बे ी....'

उनका गुस्सा तो लाज़मी था पर एक बात मेरी समझ में आ नहीं रही थी कि जो लाश यहाँ कल वे पाँचों लाए थे, उनसे इनका क्या संबंध? हो सकता है ये अलग ही कोई हों।

'इंसान ब ा ही धोखेबाज और स्वार्थी होता है। मतलब प ा था माँ माँ और काम निकल गया तो ठेंगा। नाती-पोते हैं। यहीं हैं, पर कोई नहीं आया। लाश घर नहीं ले गये जिससे कि दिनचर्या डिस्टर्ब न हो। घर पर बना कर रखा गया खाना अछूत न हो जाए या फिर चक्षुलज्जावश खाया न जा सके। नींद न खराब हो, घर पर भी न इकट्ठा न हो....ओह, इस तरह की जाने कितनी बातें हैं। प्रेम तो बचा ही नहीं....स्वार्थ ने प्रेम की जगह ले ली है...'कहते-कहते वे सहसा उठकर ख ी हो गईं।

मेरी दृष्टि सामने की स क पर चली गई....वही काली कार मु कर इधर ही आ रही थी। नहीं, अकेले नहीं थी, उसके पीछे दो और कारें थीं। महिला उधर देखकर उत्तेजित होकर बोलीं, 'वे लोग आ गये हैं अपनी माँ को लेने....मुझे जाना होगा।'

'आप क्यों जाएँगी? वे तो अपनी माँ को लेने आए हैं.....'

'इसीलिए तो....किस नरक में डाल गए थे माँ को, काश महसूस कर सकते। लावारिस स ी लाशें एक के ऊपर एक प ी हैं, बदबू के मारे वहाँ टिक पाना मुश्किल है....खैर चलो, अब इस मॉरचरी से छुट्टी मिलने जा रही है....अच्छा मैं चलती हूँ....उनकी कारें गेट तक पहुँचने ही वाली हैं....अरे उनके साथ एम्बुलेंस है, मतलब कंधा भी नहीं देंगे।' कहती हुई तेज कदमों से वह मॉरचरी के गेट से भीतर घुस गईं। मैंने उन्हें बरामदा चढ़ते नहीं देखा....मेरा ध्यान कार से उतरते लोगों की तरफ चला गया था।

थो ी देर बाद एम्बुलेंस की ट्राली में लाश बाहर निकली। एम्बुलेंस में लाश के साथ एक आदमी चढ़ा....शायद बेटा था। कारों का काफिला, एम्बुलेंस के पीछे जैसे ही चला सहसा वह महिला दौ ती हुई गेट से बाहर आईं और हाथ बढ़ाकर चिल्लाने लगीं....'रुको, रुको मुझे तो साथ ले लो....अरे धीरे चलो....' और तेज दौ ने लगीं....'मेरा तम्बाकू का चाँदी का डिब्बा उसे छो जा रहे थे तुम लोग.....'

एम्बुलेंस और कारों की रफ्तार तेज हो चुकी थी। मैंने सहसा देखा कि महिला अब स क पर नहीं दौ रही थीं बल्कि कारों के ऊपर उ रही थीं। भ्रम सोच कर आँखें पोंछी, फिर देखा....वह सचमुच उ रही थीं। मैं वहीं बेहोश होकर गिर गई।

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की सांस सों, लोहा भस्म हो जाय।।
कबीर

गीत

जवाहर इन्दु

पाँवों को कुछ होश नहीं है, मन का संयम भी बिखरा है
पूछोगे कब से ऐसा है, जब से बसन्त के दिन आये।

सावन के विरही थे अब तक,
बसन्त में ही हम मिल पाये।
जितना है विस्तार तुम्हारा,
वातावरण वरण कर जाये।।

पछुवा उ ी बयार द्वार तक, आयी गंध लिये आँगन में,
झूम उठे मन की घाटी के जितने पुष्प रहे मुरझाये।।

एक असीम चाह को लेकर
अन्तर ज्वाला धधक रही थी।
और बनी बीमार नियति यह
सोच-सोचकर सिसक रही थी।।

लेकिन गली-गली में अब तो, मधुबन भी अगवानी करता,
और छिपी वर्षों की पी ा, टेसू जैसा रंग दिखाये।।

सज्जित है दुल्हन सी धरती
आँचल पछुवा लहराती है।
जैसे वंशी के मोहक स्वर
सुन कर राधा खो जाती है।।

गोकुल था पहले भी मन यह, पर घनश्याम बसे थे उर में,
अब घनश्याम अगर आये तो, पहले नयनों में उतरायें।।

अरसा बाद मिलन है फिर भी
नयनों को विश्वास नहीं है।
सुख का ऐसा मिलन कहाँ है
जिसका कुछ इतिहास नहीं है।।

कण-कण में हर रंग चढ़ा है, मधुगन्धों में बिखर गया हूँ,
कैसे मन क्षण-प्रतिक्षण अपनी, गाथा को रह-रह दुहराये।।

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित